गुरुकुल पुस्तकालय को सप्रेम समर्पित

दे. श्री.

कृपया - वाचनालय से बाहर न ले जाइये ।

सम्पादक

महाविद्यालय - वाग्वर्द्धिनी सभा का प्रमुख पत्र

ॐ

राज-हंस

का



बुद्ध - जयन्ति - अङ्क

वर्ष २५

अङ्क २

ज्येष्ठ

सम्पा — दक

श्री. ब्र. णधीर

ॐ

राजहंस – का – बुद्ध – जयन्ती – अङ्क.

सूचिपत्र

राजहंस का बुद्ध-जयन्ती अङ्क.

सूची पत्र.

महाविद्यालय वाग्वर्धिनी सभा का प्रमुख मासिक-पत्र.

राजहंस

वर्ष-२५ | बुद्ध-जयन्ति-अङ्क | अङ्क-१
मास-अप्रैल | सम्पादक - श्री. ब्र. रणधीर १३ स. | ति.२.२.६२

बुद्ध-वाणी.

— "कोई केवल जन्म से ब्राह्मण नहीं हो सकता, और न कोई ब्राह्मण कुल में जन्म न लेने से अब्राह्मण होता है। अपने कर्मों से ही कोई व्यक्ति ब्राह्मण या अब्राह्मण बनता है।"

राजहंस
का ओ३म्
बुद्ध जयन्ति अङ्क.

"जो तुम आजाते एकबार"

श्री अनन्तानन्द द्वारा

भारत भू के नभ मण्डल पर, मेघ विपद के छाए हैं।
दामिनी दमकी परवशता की, बीर दल मुरझाए हैं॥
शस्य श्यामला थी भारत भू, कहते हैं प्राचीन समय।
सभी देश यशोगान में जिसके रहते थे तन्मय॥

आज वही स्वर्गीय भूमि हा! पड़ी हुई होकर बीरान।
धूली सात हुए हैं इसके, वे यशोगान सन्मान॥
चीत्कार ये विधवाओं के, दुखियों के ये करुण विलाप।
दीन हीन जनता का रोना करता है मनमें सन्ताप॥

आज हाय भाई भाई के, रक्त पान पर तुला हुवा।
हाय! दिलों के बीच द्वेष का नग्न मार्ग है खुला हुवा॥
भुला चुके भारत के वासी, उस अतीत गौरव की शान।
नहीं जानते कैसे गाए जाते आज़ादी के गान॥
सब कुछ खोकर आज डूबती, भारत की नैय्या मंझधार।
होता नहीं अनिष्ट कभी यह जो तुम आजाते एकबार॥

ओ३म्

उलझन:

दूर २ से अपनाकर मन,
कटु अनुभव पाता है सुन्दर ।
मृदु गुलाब का फूल कंटीली,
झाड़ी में रहता जीवनभर ।।
किसी हृदय को कुछ प्रियकर है,
वही दूसरे को प्रतिकूल ।
अलबेली रुचियां जग में हैं,
कोई अहित है वही अनुकूल ।।

ओ३म्

१२

चेतावनी

श्री. आनन्द कृष्णजी

प्रेम सूत्र में बंध जाओ, तब होगा कल्याण।
धीरज धरो मीठा बोलो, तजकर हठ अभिमान ॥ १ ॥
छूत छात का भेद मिटाकर, होवो बुद्ध समान,
सब हैं पुत्र एक पिता के, निर्धन या धनवान ॥२॥
विद्या पठन पाठन में तुम, खूब लगाओ ध्यान।
जिससे शान बढ़े भारत की, और हो तुम्हारा मान ॥ ३ ॥
मात पिता की सेवा से
कर पुरुषार्थ कमाओ खाओ, होवो अतिधनवान ॥ ४ ॥
बढ़ते जाओ हट न जाओ, मारो तुम मैदान।
चलो चली का यह मेला है, धरे रखो तुम प्राण ॥ ५ ॥

ॐ

स्नेहमय बुद्ध

श्री सत्यकृष्ण द्वादश

तुम्हें किसीने क्या देना है कर्म-भूमि है कर्म करो।
अपनी अपनी नैय्या के सब खैय्या अपने आप तरो॥
स्नेह-सरस यदि तव मानस हो प्यासा जीवन-जलका।
खिंचे खिंचे सब आजावेंगे द्वार खोल अपने दिलका॥
काले यदि उपनेत्र धारकर चारों तरफ निहारोगे।
काला ही काला सब लख कर बुरी तरह घबराओगे॥
निज मन का प्रतिबिम्ब है सब कुछ मन में यदि तेरे है छल।
छलका ही साम्राज्य तुझे फिर दीखेगा सब ओर सबल॥
लोग करोड़ों मिल जावेंगे पलपल में रोते होंगे।
सूचन जो अति दुर्व्यवहार का अन्यों के करते होंगे॥
कहते होंगे ये जग सारा है दुःखों का ही आगार।
सब ओर दृश्य भयङ्कर, दिखाता हृदय हीन निस्नेह अपार॥
सात जन्म में भी न मिलेगा सुख जिनमें न स्नेह-हृदय।
सुख का क्या अधिकार उन्हें जो हों निज भाईयों पर निर्दय॥
मार पिता के प्रिय पुत्रों को चाहते तुम उसकी हो दया।
डाल वन्हि में हस्त स्वयं रे जलने से बच सकते क्या?

18

राजहंस
का
ॐ
बुद्ध जयन्ती अङ्क

यज्ञ! अरे तुम यज्ञ हो करते भोले पशु का रुधिर बहा।
स्वर्ग मिले न मिले पीछे से मिला है नरक अब तुमको महा॥

जब भाई को भाई से जा मिलने की प्रबल कसक होगी।
एक तार के हिलते ही जब सब में विकल झनक होगी॥

संयम-सत्य-सहानुभूति की सरिता सब में बहेगी।
विषय द्वेष छल से जब दुनियां कोसों दूर रहेगी॥

एक भाव से ओतप्रोत जब सब मिलकर विचरेंगे।
दिल न दुखाके, सबको सब जब आत्म-तुल्य समझेंगे॥

हृदय, हृदय से मिल जावेगा स्नेह-सुधा का ले सञ्चार।
संसृति के कोने कोने से होगी नव-जीवन-झङ्कार॥

बुद्ध! तुम्हारी सच्ची पूजा ये जग तब कर पावेगा
हृदय हृदय में लय हो नूतन स्नेह-तराना गावेगा॥

ॐ

गंगा की गोदी में

श्री रणधीर नयोदरा

(१)

ताप तप्त हो आया हूं मैं
तेरी गोदी में छिपजाने ।
तेरी शीतल लहरों में
अपने दुःखों को बिसरावे ॥

x x x ---- x x x

(२)

मैं आया तेरी लहरों में
ताप त्रिविध को विस्मृत करने।
आया हूं तेरी गोदी में
निज पीर के आंसू बहाने ॥

x x x

(३)

सिसक सिसक कर रोते मुझको
तू आंचल में ढक लेती है ।
थपकी देदेकर तू मुझको
निज गोदी में ले लेती है ॥

x x x ---- x x x.

(४)

कभी चिन्तित हो मुझे बुलाती
कभी प्रेम से चूमती मुझको।
कभी मुझे लहरों में लेती
कभी हिलोरें देती मुझको॥

××× .... ×××

(५)

मेरी भोली खुशियों पर तू
खिल खिलकर हंस देती है।
मेरी रोती सूरत पर तू
टकराकर रोभी लेती है॥

—:०:— ××× —:०:—

(६)

'इन्दु' की सी मधुमोहकता
तेरे जलमें पायी मैंने।
तेरी गोदी को हे गंगे!!
मां की गोदी समझी मैंने॥

××× —:०:— ×××

ॐ

॥ आंसू ॥

श्री अनन्तानन्द डाबरा

(१)

क्या बतलाऊं किन शब्दों में
अपनी आह भरी पीड़ा ।
जीवन भी एक भार बना तब
हुई दैव की जब क्रीड़ा ।

× × × . . . . × × ×

(२)

प्रेम सूत्र में बद्ध हुआ मैं
मोती था दिलके उसका ।
चला छोड़ जब मुझे अहो ! वह
मैं रोया जीभर सिसका ।

× × ×

(3)

चाहा फिर अन्दर होजाऊं
वहीं रहूं खेलूं स्वच्छन्द ।
लौटा पर थी कड़ी निराशा
चक्षु कपाट पड़ेथे बन्द ।

× × × × × ×

राजहंस
की
कुछ गाथायें अश्रु

(४)

हार पथी सोचा निज मन में
पडूं लोट चरणों पर आज।
पिघल उठे पाषाण हृदय कुछ
करे स्नेह भिक्षा का दान।

× × × ... × × ×

(५)

मैं उतरा गिरपड़ा पगों में
हाथ पैर जोड़े शत बार।
चला निठुर ठुकरा मुझको हा!
समझ किसी के हिय का भार।

— × × × —

(६)

जिसका होकर रहा आजतक
लुटादिया जिस पर सर्वस्व।
आज उसीको विमुख देखकर
मिटादिया यह जीवन दुख।

× × × — × × ×

श्री अनन्तानन्द

सम्पादकीय

ता. ८.४.३६

१.

बुद्ध और उस की शिक्षा

भारतवर्ष का इतिहास सुधारकों की नामावली से भरा पड़ा है। समय समय पर प्रादुर्भूत होने वाले इन आदर्श कर्णधारों में महात्मा बुद्ध का काफ़ी ऊंचा स्थान है। इस सुधारक के काल को याज्ञिक युग या कर्म-काण्ड-काल से इतिहास की पुस्तकों में याद किया गया है। यह वह काल है जिस समय रूढ़ियों के नाम पर हज़ारों की तादाद में नरबलि कहो या पशुबलि कहो, की जाती थी। उस समय इन निरपराध बेचारे दीन प्राणियों की हत्या को हत्या नहीं समझा जाता था; परन्तु एक पवित्र धार्मिक क्रिया समझी जाती थी,

राजहंस
बुद्ध जयन्ति अङ्क.

हर प्रकार की कार्य सिद्धि का एक प्रधान साधन समझा जाता था। यह युग बिना पशुओं के रक्त की नदियां बहाने के लिये प्रसिद्ध है। इतनाही नहीं अपितु इस काल में सामाजिक एवं राजनैतिक अत्याचार भी चरम सीमा तक पहुंच चुके थे। जनता के नैतिक पतन का, तो कुछ ठिकाना भी न था।

इसी धर्मान्धता के - इसी रूढ़ि पूजा के विरोध में आज के नायक श्री **महात्मा बुद्ध** ने आवाज़ उठाई थी। यह शाक्य राजकुमार क्षत्रिय था। यह क्षत्रिय इन निरपराधों की हत्याएं एवं इन पर किये जाने वाले अत्याचारों को नहीं देख सका। उसने आततायियों को ललकारा, और उन्हें अहिंसा की शिक्षा दी, प्राणिप्रेम का - विश्वबन्धुत्व का पाठ पढ़ाया। एक बार पुनः भारतवर्ष में धर्म की इस लहर ने चहल-पहल मचा दी। इस लहर ने भारतवर्ष की बुराइयों को बहादिया। और इस की काया पलट कर दी। भारतवर्ष हमारा एक नये रूप में बौद्धधर्म की चादर

सम्पादकीय

005719

और वे जगद्गुरु कहलाये। बुद्धं शरणं गच्छामि →
→ संघं शरणं गच्छामि →
→ धम्मं शरणं गच्छामि → के नारे चारों ओर से सुनाई पड़ने लगे। और साथ ही समाज ने एक स्वर से बौद्ध धर्म में दीक्षा ली एवं अपने पापों का प्रायश्चित किया। एक स्वर से सारा भारतवर्ष पुकार उठा कि—

सब्ब पापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसंपदा।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धानुसासनं॥

यह लहर भारत तक ही नहीं रही, पर यह सारे एशिया में फैलकर एवं उस के पापों को धोती हुई उस अनन्ता में विलीन हो गई। भारतवर्ष यदि गर्व कर सकता है तो अपने इन लालों पर, जिन्होंने अपना कर्तव्य पालन करते हुवे भारतीय-संस्कृति को अमर बना दिया है।

क्या हम इन आदर्श सुधारकों के चरित्रों पर विचार करते हुवे उन से कुछ शिक्षा ग्रहण नहीं करेंगे??

वर्तमान स्वातन्त्र्य-युग के जमाने में इन्हीं

शिक्षाओं की आवश्यकता है। हमारे समाज की सड़ांद को - खराबियों को - जाँतिपाँति के भेद को - छूताछूत को - भेदभाव के भूत को दूर भगाने का सामर्थ्य यदि किसी में है तो वह है आज के नायक की शिक्षाओं में। इन शिक्षाओं वह अनुपम नवजीवन-रस भरा पड़ा है, जिसका आस्वादन करते ही सारा समाज, नहीं नहीं अपितु सारा भारतवर्ष एक मंत्र में दीक्षित होकर अपनी पूर्ण भावनावस्था में पुनः प्रकट होगा। जहां नजर दौड़ाओगे वहीं विश्वबन्धुत्व का आदर्श दिखाई देगा। "कोई बड़ा न छोटा हम में, सब हैं एक समान" की भावना को क्रियात्मक रूप में चरितार्थ होते हुवे पायेंगे। आज के नायक की यही मात्र शिक्षा है, यही आदर्श है - सन्देश है। हमें अपने कल्याण के लिये - समाज के कल्याण के लिये, अपने पुरखाओं की याद की खातिर, देश की खातिर इसी शिक्षा में दीक्षित होना चाहिये।

सम्पादकीय

(२)

व्यवस्थापिका-सभा- कांग्रेस दल के व्यवस्थापिका सभा में गतवर्ष जाने के बाद से सरकार की हार के समाचार एवं दृश्य बहुधा आँखों के सामने आते रहते हैं। सिवाय बी. दास के दमन कानूनों को हटाने के बिल पर बराबर रहने के अतिरिक्त और अन्य किसी भी महत्वपूर्ण मत गणना में कांग्रेस दल हारा नहीं कहा जा सकता। निरन्तर दो वर्षों तक Finance बिल को पूर्णतया रद्द करना, अभी तक कभी नहीं हुआ। रेल्वे तथा सामान्य बजट के प्राय: सभी मुख्य विषयों पर सरकार की हार होती रही है। ओटावा समझौते पर भी कमेटी तक की नियुक्ति न कर इसे तुरन्त रद्द करने का नोटिस देने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है। ऐसे ही चावल गेहूं आदि के आयात कर पर भी सरकार कई विषयों में हारती रही है। बैठक स्थगित करने के कई प्रस्ताव सरकार के विरोध के बावजूद भी स्वीकृत हुए हैं।

प्राय: १½ वर्ष तक मि. जिन्ना के स्वतन्त्र दल

को साथ लेते हुवे कोप करते जाना श्री भूलाभाई की सफलता का सूचक है। यद्यपि सर अब्दुररहीम को सभापति चुनने के प्रस्ताव पर तथा संयुक्त पार्लामेन्टरी कमेटी रिपोर्ट के संबन्ध में प्रस्तुत प्रस्ताव पर, ओटावा समझौते पर भी पेश किये संशोधन पर कांग्रेस दल अपने प्रस्तावों को नहीं मना सका। इन सभी आधारभूत महत्त्वपूर्ण विषयों में मि. जिन्ना के ही प्रस्ताव स्वीकृत हुवे किये गये हैं। इस प्रकार अबतक प्रायः स्वतन्त्रदल की सहायता से ही कांग्रेस दल सरकार को हरा पाया है। तथापि इतने अधिक विषयों में सरकार को हरा पाना सफलता का सूचक है।

परन्तु क्या इतनी बार हारने पर भी क्या सरकार ने किसी भी बात में गंभीरता से सभा की सम्मति को माना है। प्रायः हर बात पर वायसराय ने अपने विशेषाधिकारों का सहारा लिया है। डाकखाने के पैकेट्स तीन पैसे में ८ तोले के स्थान पर १० तोले के जा सकें इस छोटे प्रस्ताव को छोड़कर अन्य प्रायः किसीभी बात को नहीं माना गया है। श्री. ग्रिग ने तो स्पष्ट कहा ही

सम्पादकीय

है कि "बजट के बारे में सरकार किसी की बातें नहीं सुना करती"। इसी प्रकार सेनाविभाग, व्यापार विभाग और गृह विभाग में कभी कभी कहा गया है। केवल ओटावा समझौते पर सभा का निर्णय अवश्य माना जायेगा ऐसा व्यापार सदस्य ने कहा था। जो कि प्रतिज्ञा रद्दी की जायेगी ऐसी आशा है। क्या किसी भी अन्य स्वतंत्र देश में इतनी बार हारने पर और Finance बिल के इतनी बार अस्वीकृत हो जाने पर गवर्नमेण्ट वहीं की वहीं बनी रह सकती है। सर सेम्युअल होर को विदेशी राजनीति से देश के असन्तुष्ट हो जाने पर उन्हें त्यागपत्र देना पड़ा एवं वहाँ से हटना पड़ा। इस स्थिति को देख कर कौंसिलों की निःसारता तथ्य रूप में स्वराज्य की आकांक्षा तीव्र रूप में उठनी चाहिये। कौंसिलों को प्रायः जन सम्मति बनाने का साधन भी कहा जाता रहा है पर इस विषय में भी "अभ्युदय" में श्री. कृष्णकान्त मालवीय का भाषण प्रकाशित करने पर सरकार के जमानत मांगने पर पत्र का रक्षण नहीं किया जा सका। इस स्थिति को जितनी जल्दी बदला जा सके, बदल लेने का प्रयत्न करना चाहिये ।।. (श्री. प्रो. केशवदेव जी)

राजहंस
का
बुद्ध जयन्ती अङ्क.

(३)

राष्ट्रीय-महासभा-की प्रगति :—

लखनऊ में राष्ट्रिय-महासभा के अधिवेशन में यह स्पष्ट अनुभव हो रहा था कि महासभा को निरन्तर साम्यवाद की एवं सर्वसाधारण के हितों की दृष्टि को अधिकाधिक अपनाना चाहिये। पं. जवाहरलाल जी जैसे साम्यवादी राष्ट्रपति के हाथ में महासभा की बागडोर हाथ में आई है। तथा प्रान्तों निकट भविष्य में नवीन निर्वाचन प्रारम्भ होने की संभावना से चुनाव का कार्यक्रम तैयार करने की दृष्टि से गावों की कठिनाइयां, उनके कारण तथा विभिन्न प्रान्तीय परिस्थितियों को छोड़कर अखिल भारतीय आवश्यक सुधारों की मांग तैयार करने का काम अ. भा. महासभा समिति को सौंपा गया है। जो स्पष्ट करता है कि करांची कांग्रेस के आर्थिक कार्यक्रम से ही देश पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं हुआ है। तथा साम्यवादी संशोधनों में २०० से ऊपर मतों का किसी अन्य प्रमुख नेता की सहायता के अभाव में भी होना एक नवीन प्रवृत्ति का स्पष्ट निर्देशक है तथा अधिक जोरदार प्रोग्राम की मांग करता है।

सम्पादकीय

कांग्रेस के बाद ही राष्ट्रपति ने सुभाष दिवस तथा एबिसिनिया दिवस को मनाने का निर्देश किया है। एक सामूहिक प्रदर्शन की ~~से~~ लुप्त होती हुई प्रवृत्ति को पुनः प्रचारित ~~करने को~~ किया है। विदेशों में कांग्रेस का प्रचार तथा देश की सच्ची खबरों को पहुंचाने का प्रयत्न कर रहे हैं। संसार की अन्य राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में निकट परिचय ~~प्राप्त~~ पैदा करने की इच्छा भी इस कार्य के लिये उन्हें प्रेरित कर रही है। नागरिक अधिकार रक्षा की दृष्टि से सब नेताओं से मिलकर एक स्वतंत्र बोर्ड बनाने का प्रयत्न भी उन की तरफ से हो रहा है। जैसे महात्माजी ने हरिजन, ग्रामोद्योग, खादी आदि के राष्ट्रीय महासभा से स्वतंत्र सर्व दलों के लिये एक सदृश स्वतन्त्र तथा राजनीति से पृथक् संघ स्थापित किये हैं ऐसे ही एक यह भी संघ हो जायेगा ऐसा कुछ कुछ प्रतीत होता है। मजदूरों में भी कांग्रेस आन्दोलन को पहुंचाकर बढ़ते हुवे वर्गवाद की दिशा बदल राष्ट्रीय दिशा में लाने का उन का प्रयत्न एक समुचित दिशा प्रकट कर रहा है।

कांग्रेस पार्लियामेन्टरी बोर्ड को हटा कर कार्य समिति को ही निर्वाचन का सम्पूर्ण ~~अधिकार~~ कार्य सौंप देना भी एक उचित कार्य ही प्रतीत होता है।

इस प्रकार कौन्सिलों में गये हुये कांग्रेसियों पर भी आशुगामी धारा का भी काफी नियन्त्रण रहेगा और देश का कार्य कई संस्थाओं के हाथ में बंटा न रहेगा। इस एक मास में ही राष्ट्रीय महासभा में इतने परिवर्तनों का कर देना एक युवा हृदय तथा दिमाग का ही काम हो सकता है।" यद्यपि नेहरूजी के संभवतः साम्यवाद, व्यवसायवाद, सामाजिक कार्यों की महत्ता करने आदि पर महात्माजी से विचार न भी मिलते हों और वे एक नवीन धारा को चला कर गांधी युग के स्थान पर नेहरू युग के प्रवर्तक माने जा रहे हों। तथापि क्रियात्मक दृष्टि में सर्वसाधारण के लिये उन्नति कर रूप में गांधीजी के ही कार्यों को मानते हैं। अन्य दलों के साथ मिलकर नागरिक अधिकार रक्षा का प्रयत्न कर रहे हैं। साथ ही क्रान्तिकारी मनोवृत्ति को पैदा करते हुये नवीन-युग का पाया रख रहे हैं। सम्भवतः उन के अन्य कई साथी विशेष कर बम्बई बंगाल तरफ के अहिंसा पर विश्वास न करते होंगे। खादी, स्वयंसंयम आदि को महत्व पूर्ण न मानते होंगे। इन की संख्या का बढ़ते जाना ~~संभवतः~~ देश के लिये संभवतः विदेशों के अन्धा अनुकरण विदेशी

सम्पादकीय

ग्रन्थों और वहां के आन्दोलनों तथा सोवियट रशिया का केवल अनुसरण ही भारत की प्राचीन आर्यसंस्कृति की धरती को कर नवीन शिक्षित वर्ग का प्रापक हो।

महासभा के लखनऊ अधिवेशन को देखने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि सुभाष बोस और जवाहरलाल जी को छोड़कर अन्य महासभा के नेताओं का बड़ा भाग अभी तक गांधीजी का अनुयायी ही कहा जा सकता है। प्रायः सभी मुख्य २ प्रस्तावों पर ६०० में से ४०० के लगभग सम्मतियां कार्यसमिति के द्वारा प्रस्तावों को ही प्राप्त हुई हैं; केवल २०० सम्मतियां जो प्रायः यू.पी. और बंगाल की थीं, साम्यवादी संशोधनों के पक्ष में रही हैं। राजेन्द्र बाबू वल्लभभाई जी आदि का आज भी सर्वत्र सम्मान है। उन के भाषणों को बड़े ध्यान से सुना गया है। नवीन कार्यसमिति में भी १५ में से ६, १० वे ही पुराने नेता हैं। प्रायः प्रत्येक बात में सलाहें लेने के लिये बड़े बापू के पास मोटरें दौड़ती थीं। नवीन कार्यसमिति की बैठक में भी मतभेद पैदा होने पर बापू ने ही आकर उस में शान्ति पुनः स्थापित की। कांग्रेस के साथ ही साथ ग्रामोद्योग प्रदर्शिनी गांधीजी के क्रियात्मक मूर्त ज्वलंत प्रभाव की प्रदर्शक थी। रियासतों की समस्या में बहुत अन्दर न घुसने का, मंत्रिपद

को स्वीकार करने या न करने के प्रश्न का तत्काल निर्णय न करना, ग्रामीण कार्यक्रम में जमींदारों को हटादेने तथा किसानों का कर्जरद्द करने का भाव स्वीकृत कर कांग्रेस ने अभीतक गांधीजी के प्रभाव को अभी तक छोड़ा नहीं है। साथ ही साथ भूलाभाई पन्तजी सत्यमूर्ति आदि मन्त्रीपद स्वीकृत करने के पक्ष में प्रतीत हो रहे थे। यह कहा भी जा सकता है कि वर्षों के अन्दर अन्दर यह दलजीत भी जायेगा।

पंजाब तथा महाराष्ट्र बंगाल में हिन्दुमुस्लिम समस्या के कारण इन प्रान्तों में कांग्रेस का बल घटरहा है। संभवतः ३-४ वर्षों के कौंसिलों के अनुभव के बाद कांग्रेस को भी साम्प्रदायिक निर्णय के प्रति अपना रुख बदलना पड़े। पर अभीतक तो प्रायः सभी मुख्य विषयों में गांधीजी ही का मत देव अनुसरण करना उचित है। और किया जा रहा है। यद्यपि खादी स्वेयंसेवक आदि के सफल कार्यक्रम तथा सत्य अहिंसा को ध्येय में न लाना गांधीजी की धार्मिकता का राजनीति से पूरा अनुसरण न करने का सूचक है तथापि गांधीयुग की समाप्ति नहीं कही जा सकती!!

(signature)

बुद्ध के नैतिक विचार

श्री ब्र. जगन्नाथजी
१४ श.

बुद्ध-धर्म का परम लक्ष्य त्रिविध तापों से मुक्ति ही है। इस लक्ष्य की प्राप्ति संपूर्ण स्वार्थभावों तथा स्वार्थमय कामनाओं का क्षय किये बिना नहीं हो सकती। स्वभाव सदा तृष्णाओं का कारण होता है और कामनाओं को ग्रहण करने की क्रिया के रूप में प्रकट होता रहता है। यदि स्वभाव (self) को बिलकुल मिटा देना हो तो तृष्णा का अभिभव करना पड़ेगा। यदि हम ने किसी शरीरावयव का सर्वथा नाश करना हो तो हमें उस अवयव की दो निषेधात्मक अवस्थाओं के बीच के समय को कम से कम करना चाहिये। इसी प्रकार यदि स्व-भाव को आन्तरिक और बाह्य दुःखों का उत्पादक अंग समझ लिया जाये तो इस के नाश का तरीका यही होगा कि हम उस अवस्था को अनन्त तथा चिरस्थायी बनाने का प्रयत्न करें जिसमें तृष्णा या उपादान का हमारे में लेशमात्र भी नहीं होता। इस प्रकार की अनन्त अवस्था को लाने का एक मात्र

राजहंस
का
बुद्ध जयन्ति अङ्क

उपाय बुराइयों से निरन्तर बचते रहना और भलाइयों में सतत तत्पर रहना ही है। अंग्रेजी का निम्न पद्य इस सूक्ष्म भाव को स्पष्ट करेगा —

If the Noble Path be followed,
Rest and Freedom will be man's;
If Selfishness be his guide,
Sin and trouble will drag him along.

दस अतिक्रमणों से मनुष्यों के सब कार्य बुरे हो जाते हैं। यदि मनुष्य उन से बचे तो उस का व्यवहार (conduct) शिष्ट हो जाता है। ये दस अतिक्रमण इस प्रकार से हैं :—

हत्या, चोरी और व्यभिचार कायिक अतिक्रमण; असत्य, निन्दा, गाली, व्यर्थालाप वाचिक तथा लोभ, घृणा और भूल मानसिक अतिक्रमण हैं। महात्मा बुद्ध कहते हैं कि यदि इन अतिक्रमणों को करता हुआ भी पुरुष प्रायश्चित्त न करे तो वह सर्वविध-पापों का आश्रय स्थान बन जायेगा जिस प्रकार सभी प्रकार के जल समुद्र को अपना आश्रय बना लेते हैं। जब मनुष्य इन पापों को अपने में निर्बाध प्रवेश करने देता है तो ये इतने ज़बरदस्त बन जाते हैं कि इन्हें छोड़ना दुष्कर हो जाता है। इस के विपरीत यदि एक मनुष्य इन अतिक्रमणों को पहचान कर बड़ी सावधानी से छोड़ता जाता है तो उस के पाप

बुद्ध के नैतिक विचार

धीरे २ कम हो कर सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। अन्त में वह पूर्ण बुद्धत्व (full enlightenment) प्राप्त कर लेता है।

इस के अनुसार महात्मा बुद्ध ने अपने अनुयायियों के पथ-प्रदर्शन तथा मुक्ति के लिये 'दस कुशलों' का उपदेश किया था। इन दस कुशलों को आप के सामने रखने से बुद्ध के नैतिक विचारों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा।

१. क्षुद्रतम कीट से ले कर मनुष्य तक तुम किसी भी प्राणी की हिंसा न करोगे। तुम्हें जीवन-मात्र व सत्ता मात्र का ध्यान रखना चाहिये।

धम्मिक सुत्त, चूलवग्ग, तेविज्ज सुत्त, चीनी धम्मपद, जातकमाला आदि में इस प्रकार के भाव भरे पड़े हैं। इस कलियुग में "अहिंसा परमो धर्मः" मंत्र के आदि ऋषि भगवान् बुद्ध ही हुए हैं। उन्हों ने अपने भयङ्कर समय में लोगों से जो मर्मस्पर्शी अपील की उसे वेदों के अन्यतम परम भक्त भी अनसुना न कर सके। भगवान् बुद्ध ने शुष्क निषेधात्मक उपदेश ही नहीं किया अपि तु अपार दया से प्रेरित हो कर प्राणीमात्र के प्रति करुणा-वृत्ति रखने का संसार को संदेश दिया। इस अहिंसा-भाव का सब से स्पष्ट और प्रबल परिणाम सहिष्णुता-वृत्ति के रूप में प्रकट हुआ जो कि बौद्धधर्म

की बड़ी भारी विशेषता है।

(२) तुम कभी चोरी नहीं करोगे प्रत्युत हरेक को अपने परिश्रम के फल का उपभोक्ता बनने दोगे। धम्मिक सुत्त, धम्मपद और तिविज्ज सुत्त में इस आशय के व्यञ्जक अनेक वचन देखे जा सकते हैं।

महात्मा बुद्ध ने चोरी को बहुत सूक्ष्मता तक पाप ठहराया है। पञ्चम यम अपरिग्रह का स्पष्ट प्रतिपादन उन के ~~लेखों~~ वचनों में मिलता है। एक जगह वे अनाथपिण्डिक से कहते हैं — "जीवन, धन या शक्ति मनुष्य को दास नहीं बनाते प्रत्युत उन्हें चिपटे रहने का स्वभाव ही मनुष्य को दास बना देता है। जो पुरुष धन का सदुपयोग करता है वह अपने साथी पुरुषों के लिये उपयोग करता है।

बुद्धिज़म (बौद्ध-धर्म) का सार तत्त्वतः ही सामाजिक है। यह धर्म सामाजिक उद्देश्यों के लिये संयुक्त कार्य करने की शिक्षा देता है। "समानार्थ" शब्द से एक पूर्णतः भ्रातृत्व पूर्ण सामाजिक जीवन की कल्पना अति स्पष्ट है। एवं यह आधुनिक व्यवसायवाद से जो कि धन-संग्रह को एकमात्र परम ध्येय मान सब जातियों को अन्दर अन्दर से खोखला कर रहा है, सर्वथा विरुद्ध है।

(३) तुम किसी अन्य की स्त्री का सतीत्व-भङ्ग नहीं

करोगे। सर्वथा पवित्रता का जीवन बिताओगे।

बौद्ध-धर्म का संपूर्ण Canonical साहित्य ब्रह्मचर्य और पवित्रता के नियमों से भरा पड़ा है।

(4) तुम कोई एक भी मिथ्या-शब्द मुख से न निकालोगे अपितु विवेक पूर्वक सत्य-भाषण करोगे। किंतु किसी को कष्ट पहुंचाने के उद्देश्य से ऐसा न कर प्रेम-भरे हृदय से और सोच समझ कर करोगे।

यह चतुर्थ कुशल हमारे सम्मुख पूर्ण आदर्श को स्थापित नहीं करता है। हमारे यमों में सत्य शब्द को बिना किसी विशेषण के रक्खा गया है। "अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः" "जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्" इस योगदर्शन के साधनपाद के सूत्र 30, 31 सूत्रों में जो पूर्ण सत्य यमों में परिगणित है, भगवान बुद्ध उस से कुछ नीचे उतर गये हैं। इस का यह अभिप्राय नहीं कि वे आदर्शवादी नहीं थे और सत्य को वहां तक ग्राह्य समझते थे जहां तक कि यह व्यवहारोपयोगी हो। इस उपदेश-वचन का प्रयोजन तो ठीक वही है जो 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात्सत्यम प्रियम्' का। यम, नियमों के परिपालक-असिधारा व्रत के निर्वाह रक्षक ही उन वचनों का यथार्थ रहस्य समझ सकते हैं।

राजहंस का

बुद्ध जयन्ती अङ्क।

५. तुम किसी मादक-द्रव्य का सेवन न करोगे।

बौद्ध-धर्म के अनुसार मादक-द्रव्यों या औषधियों का व्यसन ६ महापापों में से है। अनुचित समयों पर गलियों में अवारागर्दी किते रहना, नृत्य, खेलों तथा विविध प्रकार दृश्यों के लिये अत्यधिक वासना, जुआ, पुनः पुनः कुसंग, आलस्य, प्रमाद ये शेष ५ महापाप हैं।

६. तुम कभी शपथ नहीं खाओगे। कभी अपशब्दों का प्रयोग न करोगे। व्यर्थालाप में समय न गंवाओगे। या तो शिष्टतापूर्वक बोलो या चुप रहो।

जो मनुष्य अपने जीवन को उच्च बनाना चाहता है उसे सब सांसारिक महत्वाकांक्षाएं और विलासमय भोग छोड़ देने चाहियें। सब प्रकार के व्यर्थ विनोदों, हानिकारक शब्दों तथा महापुरुषों के सम्बन्ध में गप्पों से उसे हिचकिचाना चाहिये। उसे मिठाइयों, मादक द्रव्य, कपड़े, सुगंध, पलंग, साज-सामग्री, स्त्रियां, योद्धा, सुरासुर, भाग्य-विधान, गुप्त कोष, छोटी २ कथाएं, निराधार या साधारण उक्तियों के विषय में कभी आलाप नहीं करना चाहिये। ४२ भागों वाले सूत्र में कहा है :— "द्युलोक, भूलोक, देव, अजगादि संबन्धी प्रश्न जो सर्वसाधारण के मनों में आते रहते हैं उन पर ध्यान देने की अपेक्षा एक सज्जन गृहस्थ का अतिथिसत्कार करना कहीं अनन्त गुणा अधिक लाभदायक और हितसाधक है"।

बुद्ध के नैतिक विचार

७. बुराइयों को न तो खोजकर फिरोगे और न उन्हें दोहराओगे। सदा दूसरों के गुणों पर ही ध्यान रखोगे। ऐसा करने से ही तुम सब की रक्षा करने में समर्थ हो ओगे।

(८) तुम कभी अपने पड़ौसी की चीज़ को लोभ की दृष्टि से न देखो। दूसरों को भाग्यशाली देख कर प्रसन्न हो ओ।

(९) ईर्षा, क्रोध, दुश्चिन्तन आदि दुर्गुणों को अपने से परे रखोगे। जो तुम्हें नुकसान पहुंचाते हैं उन से भी घृणा न करो। सभी प्राणियों के साथ क्षमा और उदार-भाव के साथ बर्तो।

इस प्रकार महात्मा बुद्ध ने यहां ईर्ष्यादि दुर्गुणों से बचकर सब से मैत्रीपूर्वक बर्तने का उपदेश दिया है। मैत्री से ही करुणा और मुदिता का उद्भव होता है। अतः मैत्री पर बल देना सर्वथा संगत है।

(१०) अनभिज्ञता से अपने को मुक्त कर सदा सत्य-ज्ञान के लिये उत्सुक रहोगे। ऐसा न हो कि तुम संदेह में पड़ कर उदासीन हो जाओ या ग़लत मार्ग के वश हो कर सुख और शान्ति की ओर ले जाने वाले श्रेष्ठ मार्ग से भ्रष्ट हो जाओ।

इस प्रकार हम ने देखा है कि महात्मा बुद्ध के ये सब विचार यम, नियमों तथा धर्म के लक्षणों की व्याख्या मात्र हैं। हां,

राजहंस का
बुद्ध जयन्ती अंक

इन की व्याख्या या विस्तार करते हुए तात्कालिक परिस्थितियों को भगवान बुद्ध ने अपनी दृष्टि में रखना है जैसा कि स्वाभाविक ही है। था इसी लिये उन्होंने सब से अधिक जोर अहिंसा, दया, प्रेम और मैत्री पर दिया है। वस्तुतः अहिंसा की पूर्ति के बिना धर्म का पालन ठीक ठीक हो ही नहीं सकता। अत एव योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि ने यमों में अहिंसा को सर्वप्रथम स्थान दिया है।

बौद्ध-धर्म में नैतिकता सीधी व्यक्तिवाद पर आश्रित है और तत्व सर्वसत्यवाद या आदर्शवाद (altruism) क्रियात्मक व्यक्तिवाद ही हो जाता है। यह है भी ठीक। अपने आत्मा से प्रेम करने की अपेक्षा किसी पार्श्ववर्ती से प्रेम करने में कोई युक्ति युक्त आधार या कारण हमें संसार में नहीं दीखता। ह्यूम ने भी ठीक इसी प्रकार के विचार एक जगह प्रकट किये हैं उदाहरणार्थ एक कृपण जिसने अपनी आमदनी में से बचा बचा कर बहुत संग्रह किया है और फिर उसे ब्याज पर उधार दे दिया है, वस्तुतः अपने लोभ से अभिभूत हो कर ही आय को हाथ से खोता है। यह सिद्ध करना कठिन है कि मनुष्य किसी उदार कृत्य से उस की अपेक्षा अधिक खो देता है जितना कि वह अपने धन को अपने लिये विशेष रूप से प्रयोग कर के। इस का कारण यह है कि अत्यधिक स्वार्थ-वृत्ति से भी आखिरकार मनुष्य जो पा सकता है वह स्व-तृष्णा की तृप्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

सूक्ति-संग्रह

इस प्रकार हम ने यहां बुद्ध के नैतिक विचार और उन का मूलभूत आधार जो दिखाया है उस से हमें उस के विचारों की उच्चता और आदर्शवत्ता का स्पष्ट ज्ञान होता है।

सूक्ति-संग्रह

1. द्वेष, द्वेष से दूर नहीं होता, प्रत्युत वह प्रेम से दूर होता है। उस का यही स्वभाव है। हमें आनन्द पूर्वक रहना चाहिये, जो हमसे विरोध करें, हमें उन से विरोध न करना चाहिये। जो हम से द्वेष करते हैं उन के मध्य रहते हुवे भी हमें द्वेष से दूर रहना चाहिये। क्रोध पर प्रेम से और बुराई पर भलाई से विजय प्राप्त करनी चाहिये। (धम्मपद- ५।२०६,२२३)

राज हंस का
बुद्ध-जयन्ति सप्ताह.

२. दूसरों का दोष सहज ही में दीख पड़ता है। परन्तु अपने दूषण देखना कठिन है। आदमी अपने पड़ोसियों के अवगुणों को भूसी की तरह छान फटक डालता है; परन्तु अपने दोषों को इस प्रकार छिपाता है जैसे ठग खोटे पांसों को जुआरी से छिपाता है।

××× —— ×××

3. अरे मूर्ख! इन जटाओं और मृगछाला धारण से क्या लाभ है? तेरा अन्तःकरण मलीन है; पर बाहर से स्वच्छता का आडम्बर बनाये हुए है। (धम्मपद)

बुद्ध - जीवनी.

श्री क्षेत्रपाल जी द्वारा

आज से २५०० वर्ष पहले, नैपाल की तराई से, एक स्वर गूंजा था— "यह संसार दुःखमय है। दुःख का कारण तृष्णा है। इसलिए तृष्णा का उच्छेद करने से दुःख का नाश होगा। उस तृष्णा के उच्छेद करने के आठ उपाय हैं — सत्य विश्वास, सत्य उद्देश्य, सत्य भावन, सत्य जीवन, सत्य प्रयत्न, सत्य भाव और सत्य ध्यान। इस प्रकार क्रम से दुःख का नाश करके मोक्ष की प्राप्ति होगी।

ईसा से ५६६ वर्ष पूर्व की बात है, कपिलवस्तु नामक नगरी में राजा शुद्धोदन राज्य करते थे। बहुत दिनों से उनके कोई सन्तान नहीं भी होती थी। अचानक एक दिन जब उन्होंने सुना कि महारानी ने गर्भ धारण किया है, तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। महारानी मायादेवी ने पितृआलय जाने की इच्छा प्रकट की। राजा ने सब प्रबन्ध कर दिया। जाते हुए, रास्ते में, महारानी को बड़े ज़ोर से प्रसव-वेदना हुई, और एक लता को पकड़ कर वे खड़ी हो गई।

उस स्थान का नाम लुम्बिनी-कानन था। पर आजकल यह रुम्मनदेवी के नाम से प्रसिद्ध है। यहां एक अशोक-स्तम्भ खड़ा है, जिस पर लिखा है— "यहीं भगवान् का जन्म हुआ था।"

सात दिन बाद ही मायादेवी पर-

राजहंस
का
बुद्ध जयन्ती अङ्क

लोक सिधार गई, और विमाता प्रजापती ने बच्चे का लालन-पालन किया। राज-पुरोहित विश्वामित्र ने बच्चे का नाम 'सिद्धार्थ' रखा, क्योंकि उसके उत्पन्न होने से सबकी इच्छायें पूरी हुई थीं। ज्योतिषियों ने देखकर भविष्यवाणी की— 'यह चक्रवर्ती सम्राट् बनेगा, या सम्यक् संबुद्ध बनेगा।

राजा ने जब सुना कि मेरा पुत्र बुद्ध बनेगा, तो सहसा उन्हें विश्वास नहीं हुआ। पर ज्योतिषियों का कथन असत्य भी कैसे हो सकता है? राजा अपने मन में बिलकुल नहीं चाहता था कि सिद्धार्थ किसी तरह भी घर से निकल जाय और बुद्ध-~~बनने का प्रयत्न करे~~ पद को प्राप्त करे। वे तो चाहते थे कि यह किसी तरह चक्रवर्ती राजा बने। इसलिए उसे राजकुमार की तरह शिक्षा देनी आरम्भ की।

राजकुमार सिद्धार्थ गुरु के पास पहुंचा। गुरु के आश्चर्य की हद न रही, जब उसने देखा कि मैं जो कुछ पढ़ाता हूं, उसको यह इतनी जल्दी याद कर लेता है। फलतः कुछ ही वर्षों में राजकुमार सिद्धार्थ सब शास्त्रों में निष्णात हो गया। शास्त्र-विद्या सीखने के बाद अब शस्त्र-विद्या सीखने की बारी आई। तो धनुष-बाण, तलवार, भाला, और घुड़सवारी इत्यादि सभी कुछ उसे सिखाया गया — जो कि एक राजकुमार को सीखने चाहिएं। जिस प्रकार शास्त्र में वह कुशल था, उसी प्रकार शस्त्र में भी दक्ष बन गया।

राजकुमार बचपन से ही एकान्तप्रिय था। अकेला बैठा न जाने क्या-क्या सोचा करता। राजा ने जब इस प्रवृत्ति को देखा, तो उसको दूर करने के लिए अनेक उपायों का अवलम्बन किया गया। क्योंकि राजा को रह-रह कर यह बात याद आती थी कि मेरा पुत्र बुद्धत्व-प्राप्ति के लिए घर से निकल जायेगा, और भिक्षु बन जायगा। जब विनोद के अनेक साधनों से भी राजकुमार की मानसिक दशा में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई दिया, तब

बुद्ध-जीवनी

राजा ने सोचा कि राजकुमार का यदि विवाह कर दिया जावे तो कदाचित वह कहीं मोह में फंस जावे। फलस्वरूप राजकुमार सिद्धार्थ का विवाह राजकुमारी यशोधरा से हो गया। सचमुच यशोधरा राजकुमार के सर्वथा योग्य थी। विवाह कुछ दिनों तक तो राजकुमार की सूक्ष्म मानस-स्थिति में निःसन्देह परिवर्तन दिखाई दिया, पर अधिक दिन तक यह अवस्था रुक न सकी। जिस भाव ने शुरू से ही जड़ जमाई हुई थी, उस भाव को सुन्दर प्रमोदोद्यान और सब ऋतुओं में सुखावह प्रासाद अधिक देर तक दूर नहीं कर सकते थे। आखिर, थोड़े दिन बाद फिर वही पुराने भाव आ आकर उसे व्याकुल करने लगे।

जिस समय राहुल का जन्म हुआ, उस समय राजकुमार की अवस्था २८ वर्ष की थी। राजा को जब यह पता लगा कि राजकुमार के एक पुत्र होगया है, तो वे कुछ निश्चिन्त से होगए और समझा कि अब तो राजकुमार फंस ही गया है। पर—

"को जानाति जनो जनार्दनमनोवृत्तिः कदा कीदृशी।।"

एक दिन राजकुमार ने राजा के सामने अपनी बाहर घूमने की इच्छा प्रकट की। राजा ने बड़ी खुशी से आज्ञा दे दी और सारा प्रबन्ध करवा दिया। सारी सड़कें साफ़ करवा दी गईं। कहीं कोई भिखमंगा नहीं, कहीं कोई ~~[illegible] नहीं~~ अङ्ग-हीन नहीं। तब सुन्दर रथ पर राजकुमार को बाहर घूमने भेजा गया। मार्ग में (देवताओं के प्रयत्न से) एक रोगी को देखा और सारथि से पूछा—"यह कौन है?" सारथि ने बताया—"इसे रोग ने घेरा हुआ है।" राजकुमार ने फिर पूछा—"क्या रोगों ने इसी को घेरा हुआ है, या सभी को घेरते हैं?" सारथि ने कहा—"दुनियां में सभी को रोग होते हैं, और इसी प्रकार कष्ट उठाना पड़ता है।" राजकुमार का मन उदास होगया, और तब सारथि से कहा—"सारथि! लौट चलो, अब आगे जाने की मर्ज़ी नहीं है।"... राजा ने

राजहंस की
७६ - जयन्ती भेंट.

जब यह ज्ञात राजा को हुआ तो उन्हें सार-थि पर बड़ा गुस्सा आया और उसको बरखास्त कर दिया।... अगले दिन राजकुमार ने फिर बाहर घूमने की इच्छा प्रकट की। अबकी बार और अधिक प्रबन्ध करके राजकुमार को घूमने भेजा गया। पर भाग्यवश आज फिर एक बूढ़े के दर्शन होगए — जो लाठी के सहारे चल रहा था। सारथि से फिर उसी तरह के प्रश्न किए गए, और उसने भी पूर्ववत् ही उत्तर दे दिये।... अगले दिन राजकुमार ने फिर घूमने की इच्छा प्रकट की। राजा ने फिर सारथि बदल-कर राजकुमार को घूमने भेजा। अब श्म-शान के दर्शन होगए और फिर उसी प्रकार प्रश्नोत्तर हुए।

राजकुमार ने जानलिया कि इस दु-निया में सिवाय रोग, बुढ़ापा और मृ-त्यु के और कुछ नहीं है, क्योंकि सब प्राणियों का यह स्वाभाविक अवश्यम्भावी है। उसने सोचा — क्या कोई ऐसा उपाय नहीं हो सकता कि मैं व्याधि, जरा और मरण से छुटकारा पा जाऊं! वह इस उपाय की तलाश में था कि एक दिन उसने एक सन्यासी को देखा। सारथि से जब पूछा कि यह कौन है, — तो उसने उत्तर दिया — "यह संसार से विरक्त है, मान-अपमान और सुख-दुःख - आदि यह ऊपर उठ चुका है, दुनियां के झगड़ों से अलग है। यही कारण है कि इसके मुख पर इतनी शान्ति विराजमान है।" राजकुमार ने सोचा कि मैं भी सन्यासी बनूंगा, मैं भी संसार से वि-रक्त होकर दुःखान्त की खोज में विचरण करूंगा और उस तत्त्व को प्राप्त करूंगा — जिसके प्राप्त हो जाने पर जरा-मरण-व्याधि — इनमें से कोई भी नहीं रहता। वह घर से निकल भागने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

आधी रात का समय। सारी सृष्टि सो रही है — निःस्तब्ध और निश्चल! राजकुमार की नींद खुली, देखा — चारों ओर शान्ति का साम्राज्य है; घर से निकल भागने का अच्छा मौका है। धीरे से

बुद्ध जीवनी

उठकर यशोधरा की शय्या के पास गया, देखा — वह शान्त-मन से सो रही है, उसका एक हाथ ~~सुख~~ राहुल के सिर पर है। इच्छा हुई कि एक बार अपने नव-जात शिशु को प्यार कर लूं, पर फिर ध्यान आया कि ऐसा करने से कहीं यशोधरा की नींद न उचट जाये। यदि यशोधरा की नींद खुल गई, तो सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जायगा।

राजकुमार यों ही घर से निकल पड़ा। छन्दक सारथि को साथ लेकर लिया और घोड़े पर सवार होकर नगर के मुख्य द्वार से बाहर हो गया। सारे पहरेदार उस समय सो रहे थे।

सवेरा होते न होते कपिल-वस्तु से १२ कोस की दूरी पर पहुंच गए। यहां अपने सारे आभूषण ~~और वस्त्र~~ उतार कर छन्दक को दे दिये और उसे लौटा दिया। छन्दक भरी आंखों से कपिल-वस्तु पहुंचा, और जाकर राजा से कहा— "राजकुमार बुद्धत्व प्राप्त करने गए हैं, और कह गए हैं कि महाराज से कहना— मैं उस तत्व की खोज में जा रहा हूं, जिसको पा लेने पर व्याधि-जरा-मरण नहीं रहते। और यह कि वे बुद्धत्व प्राप्त करके पिता-चरणों में उपस्थित होंगे।"... इधर राजकुमार ने तलवार से अपने बाल काट डाले, और किसी भिक्षु को अपने वस्त्र देकर उसके वस्त्र ले लिये। और यहां से पैदल चलना शुरू किया।

कोलिय राज्य में होते हुए, अनामा नदी के किनारे किनारे ~~चलते हुए~~ कर राजकुमार अलार-कालाम के ब्रह्मचर्याश्रम में पहुंचे। उसके आश्रम में ३०० शिष्य रहते थे। कुछ दिन वहां निवास किया, पर जब आत्मा तुष्ट होती न दिखाई दी, तो

राज हंस
का
बुद्ध-जयन्ती अङ्क.

आगे बढ़े, और राजगृह को पार करते हुए आप उद्रकाचार्य के पास पहुंचे, जिसके पास 700 शिष्य विद्याध्ययन करते थे। कुछ दिन यहां भी रहे, पर जब आशा पूरी न हुई तो फिर आगे बढ़ गये। जब उद्रकाचार्य के पास से जाने लगे, तो पाँच अन्य भिक्षु भी इनके साथ हो लिए। उन्होंने सोचा कि ज्ञान-प्राप्ति के लिए सबसे पहले शरीर-शुद्धि आवश्यक है, और बिना तपस्या के वह हो नहीं सकती। इसलिए इन्होंने निरञ्जना नदी के किनारे छः वर्ष तक कठोर तपस्या की। यहां तक कि चावल का केवल एक दाना ही खाकर सारा दिन गुजारने लगे। धीरे धीरे शरीर कृश, ~~दुबला~~ दुबला, और मृतप्राय होगया — अस्थिपञ्जर ~~निकल~~ बाहर निकल आया, और शरीर में शक्ति बिलकुल न रह गई। एक दिन अचानक मूर्छित होकर गिर पड़े।

तब सोचा कि कठोर तपस्या करने से कोई लाभ नहीं, और यह सोच कर तपस्या करना छोड़ दिया। किसी महिला ने खीर भेंट में दी, जिसे खाकर फिर कुछ स्वस्थ हुए। जब उन पांचों भिक्षुओं ने यह हाल देखा, तो उनको तपो-भ्रष्ट समझ कर छोड़ कर चल दिये।

वे यहां से निरंजना नदी के किनारे किनारे, सायंकाल होते हुए उरुवेला पहुंचे। मार्ग में स्वस्तिक नामक घसियारे ने इनको कुछ घास भेंट दी। जंगल में जाकर एक वट-वृक्ष के नीचे ध्यान-योग्य स्थान पाकर, भेंट में दी हुई घास ही वहां बिछा कर बैठ गये, और ध्यान में मग्न होगये। आंखें बन्द करते ही 'मार' अपनी सेना लेकर आ पहुंचा और इन पर आक्रमण करना शुरू कर दिया। अनेक प्रलोभन आ आकर आंखों के सामने नाचने लगे। काम-क्रोध-लोभ-

बुद्ध जीवनी

मोह आदि शत्रुओं ने चारों ओर से घेर लिया। बड़े ज़ोर का संघर्ष होने लगा। रह रह कर हृदय में धड़कन होती थी। कभी कोई पक्ष विजयी दीखता था, कभी कोई पक्ष। दीपक की ज्वाला की तरह कभी वासना प्रबल होती थी, और कभी मन्द। अकस्मात् वासना की ज्वाला एक दम भभक उठी — सारा हृदय-स्थल उससे आवृत हो गया, लेकिन थोड़े क्षण में ही वह एकदम सदा के लिए बुझ गई। — ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि बुझते समय दीपक की ज्वाला अधिक प्रकाश करती है, उसी प्रकार बड़े ज़ोर से वासना चमकी, और फिर दीप-ज्वाला की ही तरह वह हमेशा के लिए बुझ गई। वासना की ज्वाला का निर्वाण हो गया, — हृदय में एक अपूर्व शांति, और अद्भुत आनन्द विकसित हो उठा। बस आज बोध प्राप्त हो गया, आज मार को मार भगाया, और आज के ही दिन बोधिसत्त्व से बुद्ध बन गए।

सारनाथ में आकर उन्हीं पांच भिक्षुओं को — जो पहले तपोभ्रष्ट समझ कर छोड़ आए थे, सर्वप्रथम उपदेश दिया — "जो वस्तु मन में विकार उत्पन्न करती है — उसका त्याग करो। कठोर तपस्या का त्याग करो। विलासिता का भी त्याग करो, और मध्यमार्ग ग्रहण करो। इसी से तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगा।" — उपदेश सुनकर पांचों भिक्षु उनके शिष्य हो गए।

अब चक्र चल पड़ा। जिस जिसने इस उपदेश को सुना — वही मन्त्रमुग्ध की भांति पीछे हो लिया। इसी का नाम 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' है। ५ महीने में ही ६० शिष्य बन गए। और उन शिष्यों को बुद्ध ने आदेश दिया — "जिस धर्म का मैंने तुम्हें उपदेश दिया है, वह आदि में उत्तम है, मध्य में उत्तम है, और अन्त में उत्तम है। एक छोर से लेकर दूसरे

राजहंस
की
बूँद गायत्री - अंक

छोर तक इस धर्म का प्रचार करो।"

राजगृह में बिम्बिसार ने जब सुना कि राजकुमार सिद्धार्थ अब बुद्धत्व प्राप्त करके लौटे हैं — तो उनका बड़ा स्वागत किया। अपनी बहुत सी प्रजा के साथ महाराज बिम्बिसार ने शिष्यत्व ग्रहण किया। मौद्गल्यायन और सारिपुत्र ने भी शिष्यत्व की स्वीकृति मांगी। भगवान ने उनको प्रधान शिष्य के रूप में अंगीकार किया।

जब शुद्धोदन ने सुना कि मेरा पुत्र बुद्धत्व प्राप्त करके लौटा है, और दुनिया उसका शिष्यत्व स्वीकार कर रही है, तो कपिलवस्तु में आने के लिये बुद्ध को निमन्त्रित किया।

अपने सब शिष्यों सहित बुद्ध कपिलवस्तु पहुंचे, और नगर से बाहर ही न्यग्रोध कानन में निवास किया।

अगले दिन सवेरे ही भगवान भिक्षापात्र लेकर राजमहलों में भिक्षा मांगने के लिए गए। सारे राजकुल में कोलाहल मच गया — आज राजकुमार स्वयं हमारे द्वार पर भिक्षा मांगने आये हैं! राजा ने समझाया — "बेटा! यह हमारे कुल की प्रथा नहीं है। तुम राजकुल होकर भिक्षा मांगने निकले हो, इससे अधिक लज्जाजनक और क्या होगा! क्या तुम्हारे महाराज पिता के पास इतना भी नहीं है कि वह तुम्हारे भोजन का प्रबन्ध कर सके?"

बुद्ध ने उत्तर में कहा —

"पिता जी! यह आपके कुल की प्रथा बेशक न हो, पर बुद्ध-कुल की तो यही प्रथा है। बुद्ध के कुल के लिये भीख मांगना लज्जाजनक नहीं, अपितु कर्तव्य होने से गौरव-जनक है।"

बुद्ध से मिलने सारे राज-परिवार के सदस्य उनके आवास में

बुद्ध जीवनी

ही आये, पर मालिनि महोत्सवा? — वह बहुत समझाने पर भी न आई। राज-कुल की स्त्रियों ने समझाया — "जिन के दर्शनों के लिए तू दिन-रात तरसती है, नगर से थोड़ी ही दूर तो उनका आवास है। इतनी पास आई निधि से भी क्यों हाथ धोती है?" महोत्सवा न मानी। मालिनी ने कहा — "यदि भगवान् की कृपा होगी, तो वे स्वयं मेरे द्वार पर आयेंगे, और मैं तभी उनका दर्शन करूंगी।"

भगवान् ~~[illegible]~~ को जब महोत्सवा का यह भाव पता लगा, वे विवश हो गए। जिस तथागत ने मार के ऊपर विजय प्राप्त कर ली, जिस अमिताभ ने क्रोधादि-शत्रुओं का मान-मर्दन कर दिया, वे मालिनी के इस ज़िद से मान का भंग न कर सके। इसलिए, वे स्वयं महोत्सवा के द्वार पर आए। मालिनी का मान रह गया, महोत्सवा कृतार्थ हो गई। उसने राहुल को भगवान् चरणों में सौंप दिया।

उसके बाद भगवान् के छोटे भाई नन्द, राहुल, महाप्रजावती, गोपा और महोत्सवा ने भिक्षुत्व स्वीकार किया, और बौद्ध बन गए।

उधर बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु ने अपने पिता को कैद कर दिया, और जातक ग्रन्थों में लिखा है — कि उसने उसको मार डाला। जो भी कुछ हो, इतना सत्य है कि उसने देवदत्त के कहने से अपने पिता पर बहुत अत्याचार किया था। जब उसने बौद्ध-धर्म को स्वीकार किया — बौद्ध-ग्रंथों के अनुसार, ~~[illegible]~~ तब, उसने अपने सारे पापों का प्रायश्चित किया। ... देवदत्त किसी तालाब में डूब कर मर गया। और

बुद्ध जीवनी

अवध के शासक विरूधक ने शाक्यों का नाश करके कपिलवस्तु को तहस-नहस कर दिया।

भगवान् वैशाली पहुंचे। आम्रपाली नाम की वेश्या ने शिष्यों सहित उनको निमंत्रित किया। भगवान् ने बिना किसी आनाकानी के उसका निमंत्रण स्वीकार किया।

वैशाली से आगे बढ़ते ही उनके उदर में पीड़ा शुरू हो गई। कुशीनगर जाते हुए, मार्ग में चुन्द नामक लुहार ने सूअर का मांस इनको भोजन के लिये दिया, और उन्होंने, कहीं भक्त का निरादर न हो जाए — इस ख्याल से — वह स्वीकार कर लिया। पीड़ा तो पहले ही थी, अब सूअर का मांस खाकर उसमें और वृद्धि हो गई। आखिर, कुशीनगर पहुंच कर एक पेड़ के नीचे लेट गए, और अपने-प्यारे शिष्य आनन्द को बुलाकर कहा— "आनन्द! अब मेरा अन्तिम समय है।" भगवान् का इशारा समझ कर आनन्द ने सब शिष्यों को बुलाया। भगवान् उपदेश देने लगे — "जो कुछ मैंने उपदेश दिया है, यदि कोई उससे मिलती हुई बात कहे — तो मान लेना, और यदि कोई मेरे उपदेश के विरुद्ध तुम्हें कुछ कहे — तो न मानना।" यह कह कर भगवान् महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

तथागत के महापरिनिर्वाण का समाचार विद्युत्-वेग से चारों ओर फैल गया। बड़ी दूर दूर से भगवान् का अन्तिम दर्शन करने भिक्षुओं की मण्डलियां आने लगीं।

शव को कपड़ों की पांच सौ तहों में लपेटा गया, और

राजहंस का बुद्ध जयन्ती अंक

एक सन्दूक में उसे रख कर, सन्दूक को तेल से भर दिया गया। उस सन्दूक के ऊपर एक और सन्दूक रखा गया। यह सब इसलिए किया गया, जिससे कि भगवान् के अवशेष नष्ट न होने पावें।

मरने के सात दिन बाद जब शव को चिता पर रखा जाने लगा, तभी महाकाश्यप अपने ५०० शिष्यों के साथ लेकर आया, और कहा — "पहले हम भगवान् की पाद-वन्दना कर लेते हैं, तब चिता पर चढ़ाना।" ऐसा ही हुआ।

शव को चिता पर रखा गया, और राजाओं की तरह दाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। अवशेष-रूप में बची हुई अस्थियों को एक घड़े में रखा गया। उसके लिए झगड़ा होने लगा। सब कहते थे कि हम अपने यहाँ ले जा कर उस पर स्तूप बनवायेंगे। अन्त में द्रोण नामक ब्राह्मण ने कहा — "इसमें झगड़ने की कौनसी बात है? इसके बराबर २ सात हिस्से कर लो।" फलतः ऐसा ही किया गया। फिर २ सात स्थानों पर उनके ऊपर स्तूप खड़े किये गए। और जिस घड़े में अस्थियाँ रखी हुई थीं, द्रोण ने उस पर स्तूप बनवाया। ८० वर्ष की अवस्था में (४८६ B.C.) भगवान् निर्वाण को प्राप्त हुए।

संक्षेप में यही भगवान् की जीवनी है।

इति

महात्मा बुद्ध के ८ पवित्र सन्देश

१. सत्य-दृष्टि.

२. सत्य-भाव.

३. सत्य-भाषण.

४. सत्य-व्यवहार.

५. सत्य-निर्वाह.

६. सत्य-प्रयत्न.

७. सत्य-विचार.

८. सत्य-ध्यान.

राजहंस —



बोधि सत्व की तपस्या

बुद्ध धर्म का अन्य धर्मों से सम्बन्ध

श्री. सत्यभूषणजी चतुर्दश

हिन्दू, पारसी, यहूदी, बौद्ध ईसाई और मुसलमान, संसार के ये छह सब से बड़े और मुख्य धर्म हैं। इन सभी धर्मों का आपस में सम्बन्ध है, क्योंकि सभी धर्मों में बहुत से समान विचार पाये जाते हैं। कम से कम धर्म के मूल सिद्धान्त सभी धर्मों में एक जैसे हैं। धर्म के सामान्य लक्षण सब में समान रूप से चरितार्थ होते हैं। इस के अतिरिक्त सब धर्मों में हमेशा से विचारों का आदान प्रदान होता रहा है। परन्तु फिर भी हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों में आश्चर्यजनक समानता है। इस समानता को देख कर दोनों धर्मों का पारस्परिक सम्बन्ध पता लगाने की स्वभावतः जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

बौद्ध धर्म की उत्पत्ति हिन्दू-धर्म में आई हुई कुछ भयंकर बुराइयों के परिणाम स्वरूप हुई थी महात्मा बुद्ध का इरादा किसी नवीन धर्म की स्थापना करना बिलकुल न था। नाही उन्होंने कोई नवीन आविष्कार किया। उन्होंने हिन्दु-धर्म की बिगड़ी हुई अवस्था को सुधारा। उन का सारा प्रयत्न हिन्दु समाज की बुराइयों को दूर करने के लिये था।

महात्मा बुद्ध के प्रचार कार्य से पहिले हिन्दुधर्म की अवस्था बहुत शोचनीय हो चुकी थी। हिन्दु धर्म की तत्कालीन अवस्था पर दृष्टिपात करने से वे सब बुराइयां स्पष्ट हो जाती हैं, जिन जिन के विरोध में भगवान् बुद्ध को आवाज़ उठानी पड़ी।

उस समय वैदिक सभ्यता के प्राण वेदों का पठन पाठन

बन्द हो चुका था। वेदों और उपनिषदों की पवित्र शिक्षाओं के स्थान पर अन्ध विश्वास और निरर्थक रीति रिवाज़ प्रचलित हो गये थे। वेदों के नाम पर यज्ञों में निरपराध, मूक पशुओं की बलि दी जाती थी। आदर्श वर्णव्यवस्था के स्थान पर जन्ममूलक जाति पांति का प्रचार था। छुआछूत के संहारक रोग ने समाज में घर कर लिया था। जाति के नेता ब्राह्मण लोग वेदों की शिक्षाओं से अनभिज्ञ, सदाचार विहीन और भोग विलास में रत रहते थे फिर भी केवल ब्राह्मण कुल में पैदा होने के कारण समाज में उन का आदर और प्रतिष्ठा की जाती थी। सारांश यह कि सच्चे धर्म से लोग विमुख हो गये थे।

हिन्दुसमाज की इस गिरी हुई अवस्था को देख कर गौतम बुद्ध को बहुत खेद हुआ और उन्होंने इस के सुधार का बीड़ा उठाया।

बुद्ध ने वेद नहीं पढ़े थे, फिर भी पुराने सच्चे धर्म का उन्हें ठीक ज्ञान था। उन्होंने अपनी सूक्ष्म बुद्धि से सच्चे धर्म का साक्षात्कार कर लिया था और सचाई को समझ लिया था। उन की सब शिक्षायें वेदानुकूल थीं। यहां यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि महात्मा बुद्ध ने जिन बातों का प्रचार किया, वे मनुष्य के जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। उस समय की सब से बड़ी आवश्यकता सदाचार थी। लोग अपने जीवनों को सुधारने और उन्नत करने की ओर बिल्कुल ध्यान न देते थे। महात्मा बुद्ध ने धर्म के क्रियात्मक अंग यानी नैतिकता का प्रचार किया। वे दार्शनिक बातों से अलग रहते थे। अपने अनुयायियों को भी उन्होंने दार्शनिक झगड़ों में न पड़कर जीवन को सदाचारमय बनाने का उपदेश किया।

बुद्ध धर्म का अन्य धर्मों से सम्बन्ध।

आजकल का बौद्ध-धर्म ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करता, इस लिये बहुत से लोग ~~महात्मा~~ बुद्ध को भी नास्तिक और वेदों का निन्दक बतलाते हैं। परन्तु वास्तव में महात्मा बुद्ध न नास्तिक थे और न कभी उन्होंने वेदों की निन्दा की। हम उन्हें ~~नास्ति~~ अक्षेपवादी कह सकते हैं। उन्होंने अपना जीवन धर्म के क्रियात्मक अंग के प्रचार में लगाया। उन का उद्देश्य सामाजिक सुधार करना था। संसार नित्य है या अनित्य? सृष्टि किस प्रकार उत्पन्न हुई, उसे बनाने वाला कौन है- इत्यादि गम्भीर दार्शनिक समस्याओं ~~में~~ की उलझनों में वे कभी नहीं पड़े। उन के सामने इस से उच्चतर आदर्श था। वे समाज में से विषमता अन्याय और अत्याचार को दूर करना चाहते थे। लोगों को बाहरी रीतिरिवाजों और सामाजिक बन्धनों की निस्सारता बतलाना चाहते थे। नीची जातियों के साथ होने वाले अत्याचार और दुर्व्यवहार का दमन करना चाहते थे। यज्ञों में बलि चढ़ाये जाने वाले मूक प्राणियों का वध उनसे देखा नहीं गया। उन्होंने देखा कि इन दार्शनिक समस्याओं का कोई अन्तिम फैसला नहीं होता और व्यर्थ का विरोध बढ़ता है। इस लिये उन्होंने इस प्रकार के विवादों में न पड़ना ही उचित समझा और जान बूझ कर इन बातों की उपेक्षा की। एक बार मालूक्य पुत्र नाम के उन के एक शिष्य ने उन से संसार के विषय में प्रश्न किया तो उन्होंने कहा- 'हे मालूक्य पुत्र! क्या मैंने तुम्हें कभी ऐसा कहा है कि तुम आ कर मेरे शिष्य बनो और मैं तुम्हें संसार की अनित्यता या

नित्यता के सम्बन्ध में उपदेश दूंगा।' मालूंक्य पुत्र ने उत्तर दिया- 'नहीं महाराज। ऐसा तो कभी नहीं कहा।' बुद्ध ने कहा- 'तो इस प्रकार के प्रश्न मत पूछो।' इस उदाहरण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध ने धर्म के दार्शनिक भाग की पूर्ण रूप से उपेक्षा की और ईश्वर, सृष्टि आदि विषयों पर कभी कुछ नहीं कहा। वे एक सामाजिक सुधारक थे। उन्होंने नैतिकता के प्रचार में अपना जीवन लगाया। धार्मिक संस्थान की दृष्टि से आदि बौद्ध-धर्म जिस के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध थे, सर्वथा अपूर्ण था क्योंकि उस में दार्शनिक समस्याओं का समाधान नहीं किया गया। प्रत्येक धर्म में ईश्वर और सृष्टि विषयक प्रश्न स्वभावतः उत्पन्न होते हैं और उन का उत्तर दिया जाना आवश्यक है। बिना दार्शनिक समस्याओं का हल किये कोई धर्म, धर्म नहीं कहला सकता। भले ही उस का समाधान युक्तियुक्त हो या न हो। इस दृष्टि से भी प्रारम्भिक बौद्ध धर्म कोई नया धर्म न था। पीछे से महात्मा बुद्ध के अनुयायियों ने अपने धर्म की इस बड़ी कमी को अनुभव किया और अपने विचार के अनुसार दार्शनिक बातों के उत्तर सोचे। इस प्रकार बौद्ध धर्म में दर्शन शास्त्र का प्रवेश हुआ। बौद्ध दर्शनों में संसार को नित्य- ~~[illegible]~~ ही माना गया और उस को बनाने वाले किसी कर्ता की आवश्यकता न रही। इस प्रकार बौद्ध-धर्म जो प्रारम्भ में अज्ञेयवादी था, पीछे से अनीश्वरवादी हो गया और तब से इसे

बुद्ध धर्म का अन्य धर्मों से संबंध-

नास्तिक धर्म कहा जाने लगा।

चाहे कुछ भी हो, पर तो मानना ही पड़ेगा कि शुरू में बौद्ध धर्म कोई पृथग् धर्म न था अपितु यह हिन्दु धर्म का ही अंग था, जो एक जबर्दस्त क्रान्ति के फलस्वरूप पैदा हुआ था। इस बात को सिद्ध करने के लिये हमारे पास कई प्रबल प्रमाण हैं।

सुत्त निपात, जो कि महात्मा बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है और बौद्धों का मान्य ग्रन्थ है, उस में कई स्थानों पर बुद्ध ने कहा है कि मैंने पुराने धर्म को प्रकाशित किया है, जो बात छिप गई थी, उसे प्रगट किया है और जो चीज लुप्त हो गई थी, उस का पुनरुद्धार किया है।

मि. रमेशचन्द्र दत्त, जो बौद्ध-धर्म के विषय में प्रामाणिक ऐतिहासिक लेखक हैं; उन की भी यही सम्मति है कि गौतम बुद्ध ने कोई नई खोज नहीं की, पुराने धर्म का ही प्रकाश किया है।

उस समय के हिन्दु समाज में साधकों के कई सम्प्रदाय थे। ये लोग संसार को त्याग कर तपस्यामय जीवन व्यतीत करते थे। इन को भिक्षु या श्रमण कहा जाता था। गौतम बुद्ध ने ऐसे ही एक और सम्प्रदाय को जन्म दिया, जो शाक्य पुत्रीय श्रमण के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दोनों धर्मों की अभिन्नता का सब से प्रबल और पुष्ट प्रमाण यह है कि दोनों की शिक्षायें एक हैं। हम पहिले ही बता चुके हैं कि महात्मा बुद्ध का धर्म व्यावहारिक धर्म था और सदाचार या नैतिकता तक सीमित था। इस में आचरण में लाने योग्य बातों पर बल दिया गया है।

राज हंस का बुद्ध-
जयन्ति अंक.

बौद्ध धर्म की चार बड़ी सचाइयां कि-(१) जीवन दुखमय है (२) दुखों का कारण तृष्णा या इच्छा है (३) तृष्णा के निरोध से दुख का नाश हो सकता है। (४) तृष्णा दूर करने का उपाय मध्यमार्ग पर आचरण करना है - हिन्दू-धर्म-शास्त्रों से ली गई हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय ब्रह्मचर्य आदि यमों का पालन बौद्ध धर्म में आवश्यक बताया गया है।

संसार से पृथक् हो कर पवित्र जीवन बिताना शुद्धि का साधन है। ऐन्द्रियिक सुखों का परिणाम अवश्यम्भावी दुख होता है। संसार में न फंस कर मनुष्य को कर्म करना चाहिये। कर्मफल मिलता है और कर्मों के कारण ही कोई अछूत बनता है, जन्म से नहीं। बुरा आचरण करने वाला, कर्ज न चुकाने वाला और दूसरों की निन्दा करने वाला व्यक्ति अछूत है। "Not by birth does one become an out-cast, not by birth does one become a Brahmana. By deeds one becomes an out-cast, by deeds one becomes a Brahmana. सब प्राणियों को समान दृष्टि से देखना चाहिये, सब से प्रेम करना चाहिये और सब का भला सोचना चाहिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध धर्म में वही आत्मा है जो वैदिक धर्म में है। महात्मा बुद्ध चाहे वेदों के पण्डित न थे उन्हें वेदों के सम्बन्ध में कुछ थोड़ा ज्ञान अवश्य था, सुत्त-निपात को पढ़ने से हमारे मन पर तो यही प्रभाव पड़ा है।

बौद्ध धर्म की उत्पत्ति हिन्दू-धर्म से हुई। हिन्दू धर्म में ही यह फला फूला और बढ़ा। लेकिन तात्कालिक परिस्थितियों और

बौद्ध धर्म का अन्य धर्मों से सम्बन्ध.

पीछे के बौद्धों एवं ब्राह्मणों के पारस्परिक दार्शनिक संघर्षों के कारण दोनों में विरोध बढ़ता गया और बौद्ध धर्म एक पृथक् धर्म बन कर कुछ समय के लिये अभ्युदय के उन्नतम शिखर पर पहुंच गया। यह एक राजधर्म बन गया और संसार के एक बड़े भाग में बौद्ध साम्राज्य की स्थापना हुई। पीछे से भारतवर्ष में मुसलमानों के आक्रमणों से बहुत से बौद्ध इस देश को छोड़कर तिब्बत, चीन जापान आदि विदेशों में भाग गये और बचे हुए पुनः हिन्दू-धर्म में लौट आये। भारत में बौद्धों के न रहने से दोनों धर्मों का विरोध सदा के लिये शान्त हो गया।

वर्तमान समय में जब कि धार्मिक एकता और जातीय संगठन के शुभ प्रयत्न जारी हैं, क्या यह सम्भव नहीं कि बौद्धों को पुनः हिन्दू धर्म में मिला लिया जाये। हिन्दू धर्म एक विशाल धर्म है। इस में एक दूसरे से विभिन्न सिक्ख, जैन, आर्य सनातनी आर्यसमाजी, ब्राह्मसमाजी, देवसमाजी, राधास्वामी दादूपन्थी, कबीर पन्थी आदि अनेक सम्प्रदाय विद्यमान हैं और सब लोग एक स्वर से अपने को हिन्दू कहते हैं। यदि बौद्ध लोग भी अपने को हिन्दू कहने लग जायें, तो कोई बुराई नहीं। राष्ट्रीयता की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है कि बौद्धों को हिन्दू-धर्म में ही गिना जाये। इस कार्य में कोई कठिनाई भी नहीं। बौद्धों की जन्मभूमि भारतवर्ष है और हिन्दू धर्म में उन की उत्पत्ति हुई है। महात्मा बुद्ध हिन्दू थे, हिन्दू संस्कृति के रक्षक थे।

हर्ष का विषय है कि देश के नेताओं का इस आवश्यक प्रश्न की ओर ध्यान खिंचा है। बौद्धों को हिन्दुओं में शामिल

राज हंस का बुद्ध—
जयन्ती अंक.

करना कोई कठिन बात नहीं। क्योंकि हिन्दू लोग आज भी महात्मा बुद्ध को अपना अवतार मानते हैं। दोनों धर्मों की एकता के शुभ लक्षण प्रगट होने लग गये हैं।

गया का बौद्ध मन्दिर बहुत समय से हिन्दू पुजारी के आधीन है। बौद्धों के नेता भिक्षु उत्तम पिछले वर्ष हिन्दू महा सभा के सभापति बनाये गये थे। १९३४ में जापान में हुई बौद्धों की कान्फ्रेन्स में हिन्दु महासभा ने भी अपने दो प्रतिनिधि भेजे थे। अन्त में हम महात्मा गान्धी का सन्देश जो कि उन्होंने इस कान्फ्रेन्स को भेजा था, पढ़ कर अपना लेख समाप्त करेंगे।

'यह मेरा सुनिश्चित मत है कि भगवान् बुद्ध के उपदेशों के मूल सिद्धान्त इस समय हमारे हिन्दू धर्म के अभिन्न अंग हो रहे हैं। गौतम ने हिन्दू धर्म में जो महान् सुधार किये थे आज हिन्दू भारत के लिये यह असम्भव है कि वह पीछे लौट कर उन सुधारों को भुला दे। अपने महान् त्याग, अपने महान् बलिदान और अपने जीवन की निष्कलंक पवित्रता से इस महान् शिक्षक ने हिन्दू धर्म पर अमिट छाप लगा दी है और हिन्दू धर्म इस महान् शिक्षक का चिर ऋणी है। हिन्दू धर्म में जो कुछ सर्वोत्कृष्ट था, गौतम उससे ओतप्रोत थे। वेदों में जो शिक्षायें गड़ी हुई थीं और जिन के चारों ओर घास पात का जंगल उग रहा था, गौतम ने उन्हें परिष्कृत कर के पुनर्जीवित किया। जहां कहीं बुद्ध गये, वहां उन के चारों ओर एकत्रित होने वाले, उन का अनुगमन करने वाले अहिन्दू नहीं, वरन् हिन्दू थे जो हिन्दू नियमों से ओतप्रोत थे। बुद्ध ने हिन्दू धर्म को त्यागा नहीं, वरन् उस के आधार को विस्तृत किया। उन्होंने उसे नया जीवन और नये अर्थ प्रदान किये। गौतम हिन्दुओं से बढ़ कर हिन्दू थे। उन्होंने जो किया वह यह था कि अपने चारों ओर फैले हुए धर्म को विशुद्ध कर के उन्होंने उस में सजीव सुधार किये।'

६८२

ओ३म्

बुद्ध धर्म का प्रचार

श्री मतिमान् जी त्रयोदश

भारत वर्ष के इतिहास में समय समय पर जो क्रान्तिकारी महापुरुष जन्म लेते रहे हैं उनमें महात्मा बुद्ध का स्थान बहुत ऊँचा है। महात्मा बुद्ध के जन्म के दिनों इस देश का सामाजिक और वैयक्तिक आचार बहुत अवनत हो चुका था। इतिहास में इस युग को कर्मकाण्ड का युग कहा गया है, कर्मकाण्ड का अर्थ यज्ञों से है। यज्ञ ही मोक्ष प्राप्ति का साधन समझा जाता था। यज्ञों में पशुयज्ञ पराकाष्ठा को पहुंचा हुआ था। निरपराध, दीन, असहाय पशुओं के रुधिर से यज्ञवेदी लाल की जाती थी। समाज बाह्याडम्बर में फंसा हुआ था, उसकी आत्मा घोर अंधकार में पड़ी हुई प्रकाश के लिए पुकार रही थी। लोग आत्मिक जीवन का महत्व भूल रहे थे। आत्मा की वास्तविक उन्नति की ओर लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। तप तामसी प्रकार का किया जाता था और इस तप की ही महिमा खूब फैली हुई थी। महात्मा बुद्ध ने इसी रूढ़िपूजा के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने इन प्रचलित अंधविश्वासों और कुरीतियों को दूर

राजहंस

बुद्ध-जयन्ती-अंक

करने के लिए अपने वैभवशाली राज्य को छोड़ दिया, तपस्या और करने पर ज्ञान लाभ प्राप्त हुआ और "बुद्ध" बनकर उसने निश्चय किया कि संसार से अंधविश्वास को दूर करना चाहिये। इसलिये उसने अपने शिष्यों को पहिले उपदेश दिया था कि — "हे भिक्षुओ! अब तुम लोग जाओ और बहुतों के कुशल के लिए, संसार की दया के निमित्त, देवताओं और मनुष्यों की भलाई के लिए भ्रमण करो। तुममें से कोई भी दो मार्ग से न जाओ।" अन्त में बुद्ध ने अपनी साधना और तप के बल से भारत में एक परिवर्तन कर दिया — हिंसा के भावों के स्थान में "अहिंसा परमोधर्मः" का नाद सुनाई देने लगा। तथापि बुद्ध के समय में बौद्धधर्म केवल भारत तक ही सीमित रहा। आगे चलकर इस धर्म की चार महासभाएं हुईं। आदि तीसरी महासभा के बाद ही देश देशान्तरों में बौद्धधर्म का प्रचार हुआ; बौद्ध धर्म के प्रचारक अशोक के समय ही भारत से बाहर गए। वैसे तो बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ बुद्ध ने "बौद्ध भिक्षुसंघ" स्थापना की थी। यह संघ

बुद्ध धर्म का प्रचार.

अपने कार्य में विशेष सफल हुआ नहीं दीखता। क्योंकि बुद्ध की मृत्यु के बाद कोई ऐसी संस्था या व्यक्ति न था, जो कि उनका अपना दबाव रखता। इस कारण बुद्ध की मृत्यु के बाद ही इस धर्म वालों में मतभेद होने लगा। समय समय पर मतभेद महात्मा द्वारा दूर करने का प्रयत्न भी किया जाता रहा। आगे!

दीपवंश, महावंश तथा अन्य बौद्ध ग्रन्थों और शिलालेखों के अनुसार एक बहुत लम्बी सूची मिलती है जिससे स्पष्ट पता चलता है कि बौद्ध धर्म के प्रचारक विदेशों में प्रचारार्थ गए थे। विदेशों में प्रचारार्थ एक महत्वपूर्ण संगठन बना था। प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्मिथ का कथन है कि — "संसार के इतिहास में धार्मिक प्रचार के लिए इससे अधिक महत्वपूर्ण और संगठित प्रयत्न और कभी नहीं हुआ।" यह धर्मप्रचार का श्रेय तृतीय महासभा को ही है। अशोक ने तो "धर्म" विजय किया पर — बौद्ध धर्म का नहीं" किन्तु

यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि "धर्म विजय" से भी ~~बुद्ध~~ इसमें काफी सहायता मिली थी।

शिलालेखों के अनुसार पश्चिमीय एशिया, ईजिप्त, साइरीनि (उत्तरीय अफ्रीका) आदि स्थानों में भी प्रचारक प्रचारार्थ गए थे। इसके सिवाय भारत के दक्षिण में ~~जो प्रदेश~~ चोल- पांड्य- केरलपुत्र, ताम्रपर्णी आदि जो प्रदेश अशोक साम्राज्यवर्ती नहीं थे वहाँ भी प्रचारक "धर्म" प्रचार करते थे।

इनमें जो विदेशी राजा तो ऐहिक सुख में लगे रहते थे, प्रजा की भलाई की कल्पना भी नहीं कर पाते थे तब सम्राट अशोक ने इन विदेशी राज्यों में भी प्रजा के हित साधन का कार्य किया, यही कारण है कि खून की एक बूंद भी गिराए बिना, केवल प्रेम और परोपकार के द्वारा अशोक ने अपनी अपूर्व धर्म विजय स्थापित कर सका। ये प्रचारक आराम पसंद नहीं थे, कष्टों को झेले और जान से ही मतलब था

बौद्ध धर्म का प्रचार

मतलब तो केवल धर्म प्रचार से था। ये प्रचारक धर्म विजय के लिए अपना तन मन और धन खो चुके थे। इन्होंने क्रियात्मक जीवन द्वारा लोगों पर प्रभाव जमाया यही कारण है कि बिना बड़े २ शास्त्रार्थों के, बिना बड़े २ व्याख्यानों के हजारों नहीं, नहीं, लाखों मनुष्य बौद्ध धर्म के अनुयायी होने लगे।

इन प्रदेशों के अतिरिक्त खोतान में भी सम्राट् अशोक के पुत्र कुस्तन ने इस धर्म को ~~फैला~~ फैलाया था ऐसा खोतानी तथा चीनी ग्रन्थों से ज्ञात होता है।

चीन में भी यह धर्म राजा श्री हुआंगती के समय (२४६ B.C.) गया। इससे पहले तृतीय महासभा के निर्णय के अनुसार कई थेरों को प्रचारार्थ भेजा गया था। इन्होंने वहाँ कुछ बल सहित धर्म का प्रचार किया था।

लंका में भी अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र तथा

राजदूत
और
बुद्ध जयन्ती-अंक

पुत्री संघमित्रा को प्रचारार्थ भेजा था - साथ ही वहाँ के राजा को - जो कि अशोक का मित्र था - इस धर्म की दीक्षा लेने की सलाह दी थी। हमें महेन्द्र और संघमित्रा के धार्मिक प्रचार की भावना को ध्यान में रखना चाहिये।

इसके सिवाय यूनानी जगत में मिश्र के राजा तुलमय ने सिकंदरिया में प्रसिद्ध पुस्तकालय की स्थापना या वृद्धि की थी और भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद कराने को उत्सुक था। ईसा के समय में जूडिया में ईसीन तथा मिस्र में थेरापुत नामक जाति के लोग रहते थे इनके लिये प्रसिद्ध है कि ये बौद्ध धर्म की ही एक शाखा के लोग थे। इससे स्पष्ट है कि अशोक के समय भी प्रचारक के अनुसार उन्होंने वहाँ जाकर अपने धर्म का प्रचार किया था और वहाँ बस गये थे।

इसी प्रकार कोरिया में भी इस धर्म का बहुत विकास होने पर वहाँ के राजा कुदारा ने ५३८ में जापान के राजा को बुद्ध की मूर्ति और कुछ सूत्र उपहार में भेजे,

बुद्ध धर्म का प्रचार

साथ ही साथ प्रार्थना की कि आप भी इस धर्म को स्वीकारें, क्योंकि यह धर्म आज चीन, मध्य एशिया, लंका-जावा-सुमात्रा आदि स्थानों में पाया जाता है। जापान के राजा शोतोकु ने ५९३ ई. में बुद्ध-संघ और धम्म में विश्वास प्रकट किया।

बर्मा और आसाम में भी बुद्धघोष ने ४५० ई. में इस धर्म का प्रचार किया था। वैसे तो कनिष्क जो १५० ई. में हुआ था उसने भी अपने प्रचारक भेजे थे, पर उनकी सफलता का कोई वर्णन नहीं पाया जाता।

जावा, सुमात्रा और बाली के प्रदेशों में २०० ई. पूर्व ही इस धर्म का प्रचार हो चुका था। यह बात इमारतों के लेखों से जान सकते हैं। साथ ही साथ इसकी पुष्टि फाहियान और इत्सिंग के लेखों से भी हो जाती है।

तिब्बत, नेपाल आदि में तो जब मुहम्मद-बिन-बख्तियार खिलजी ने बंगाल पर आक्रमण कर मुसलमान-इतर व्यक्तियों को मारना शुरू किया तब वे बौद्ध भिक्षु जहाँ शरण मिली वहाँ भाग गए — आसाम व उड़ीसा इन प्रदेशों में भी आश्रयार्थ गए थे उन्होंने इस धर्म का प्रचार किया था।

राजदूत
की
बुद्ध जयन्ती अंक.

सम्राट अशोक और राजा कनिष्क के सिवाय महाराजा हर्ष ने भी इसके लिए बहुत कार्य किया है। चीनी यात्री भारत में आचार्य आए थे वे अनेकों बौद्ध धर्म को चीन में ले गए और अनुवाद करके अपने देशों में इसका प्रचार किया।

इस प्रकार हमने देख लिया कि बौद्ध धर्म के प्रचारकों के प्रयत्नों से यह धर्म सर्वत्र फैल चुका था। उन्हीं की कृपा से आज संसार के एक तिहाई आदमी बुद्ध के भक्त हैं और बुद्ध को ईश्वर के रूप में पूजते हैं। आज भी महात्मा बुद्ध का नाम संसार के महापुरुषों में लिया जाता है।

इस धर्म के प्रचार में अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा, आचार्य उपगुप्त और सम्राट अशोक का विशेष महत्व है। इसमें भी संदेह नहीं कि इन्हीं महात्मा के बाद ही इस धर्म का इतना प्रचार हुआ था। ये महात्माएं लोक कार्य करती थी।

बुद्ध धर्म का प्रचार

महात्मा बुद्ध की मृत्यु के बाद यह धर्म भी अनेक दलों में विभक्त हो गया था - किन्तु समय समय पर महात्माओं के अधिवेशनों को करके उनमें एकता स्थापित की जाती रही।

यह तो आपको पता ही होगा कि महापुरुषों के साथ कई अद्भुत घटनाएं जोड़ दी जाती हैं - वैसे ही इन प्रचारकों के साथ भी हुआ है। साथ ही साथ एक प्रदेश में थोड़े से प्रयत्न से लाखों व्यक्तियों का बौद्ध हो जाना भी सरल नहीं जान पड़ता। यदि ये बातें पूर्णरूपेण सत्य न हों तो भी ये उस लगन को तो अच्छी प्रकार प्रदर्शित कर देती हैं जो कि सम्राट् अशोक के शासनकाल में देश विदेश को बौद्ध धर्म से आप्लावित कर रही थी। यह भी निस्संदेह कहा जा सकता है कि बुद्ध ने बौद्ध धर्म का प्रारम्भ किया, समानता, भ्रातृभाव,

राजहंस का
बुद्ध जयन्ती अंक.

विश्वप्रेम और अहिंसा के सिद्धांतों को मनुष्य-जाति के सामने रखा, तो अशोक ने इनको कार्यरूप में परिणत करके सारी दुनिया को इसका संदेश सुनाया।

यह है बौद्ध धर्म के विदेशों में प्रचार का संक्षिप्त इतिहास। इसका पूर्णरूपेण इतिहास प्राप्त नहीं होता है। फिर भी यह कहना असंगत नहीं होगा कि इन धर्मों ने अपने अनुयायियों को बड़ा आनन्द प्राप्त का परित्याग कर सुदूरवर्ती देशों में जाकर, जनजातों को सहकार संगठन का हित-साधन किया था। वस्तुतः ये लोग धन्यवाद के पात्र हैं।

बुद्ध - धर्म

श्री. हरिदत्त जी त्रयोदश

भगवान् बुद्ध ने प्रचलित धर्म में सुधार किया। उन से पहिले का धर्म याज्ञिकों की हिंसा से अधर्म बन चुका था। यज्ञ की पवित्र वेदियां खून से लाल होती थीं। विधि विधानों के विस्तार से ~~अ~~ कर्मकाण्ड का मार्ग अत्यन्त जटिल होगया था। पर भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेशों में अहिंसा, दया, सहानुभूति और प्रेम का प्रचार किया। मनुष्य का वैयक्तिक आचरण पवित्र करने पर बल दिया। बुद्धत्व प्राप्त करने के लिये दस पारमिताओं ~~पाल~~ की सिद्धि आवश्यक थी। एक पारमिता कई जन्मों में सिद्ध होती थी। बुद्ध भगवान् ने स्वयं कई सौ जन्मों में इन की सिद्धि पायी थी। जातक ग्रन्थों में इन का मनोरंजक वर्णन उपलब्ध होता है। अतः यह कहना सर्वथा युक्तियुक्त और इतिहास सम्मत है कि बुद्ध का

का धर्म क्रियात्मक है, व्यावहारिक है और सरल है। इसी कारण बौद्ध धर्म अन्य धर्मों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुआ।

अपनी इन शिक्षाओं को प्रसारित करने के लिये फिर भगवान बुद्ध ने भिक्षु संघ की स्थापना की। सारनाथ में धर्मचक्र प्रवर्तन करते हुए उन्हों ने शिष्यों को उपदेश दिया था - "हे भिक्षुओ, अब तुम लोग जाओ और बहुतों के कुशल निमित्त, के लिये, संसार की दया के लिये, देवताओं और मनुष्यों की भलाई और कुशल के लिये भ्रमण करो। तुम में से कोई दो भी एक मार्ग से न जाओ।" इस प्रकार भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को बौद्ध धर्म के प्रचार की प्रेरणा की। वे निरन्तर ४५ बरस तक घूम कर साधारण जनता को अपना सन्देश सुनाते रहे। इस प्रचार से एक नयी स्फूर्ति और शक्ति पैदा हुई। इस ने केवल भारत में ही नहीं अपितु भारत के बाहर लगभग सम्पूर्ण एशिया में भारतीय संस्कृति सभ्यता और कला का प्रसार किया। एक महान प्रक्रम प्रारम्भ हुआ। यह प्रक्रम एक विशाल भारतीय काल का प्रक्रम था। अशोक ने इस को आगे बढ़ाया। कनिष्क ने इसे सफल

बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया। इस महान भारतीय कार्य के उद्योग के साधन वे अध्यवसायी और तपस्वी भिक्षु थे जिन के उद्देश्य सर्वथा धार्मिक थे। उन को प्राणियों के दुःखों की दवाई प्राप्त हुई थी। इसे वह अधिक से अधिक मनुष्यों को बांटकर उन का कल्याण साधन करना चाहते थे। उन्हों ने मध्य एशिया की जंगली जातियों को सभ्य बनाया। अपनी सभ्यता का गर्व करने वाले यूनान ने इन प्रचारकों से लाभ उठाया। ईसायत पर बौद्ध धर्म की गहरी छाप का कारण भी ये भिक्षु ही थे। दक्षिण एशिया की आग्नेय जातियां अपनी उन्नति के लिये बौद्ध धर्म की ऋणी हैं। इतने बड़े भूखंड पर अपने गुरु का संदेश सुनाते समय इन भिक्षुओं के मन में कोई साम्राज्यवादी प्रेरणा नहीं थी। ~~धर्म का~~ आजकल का साम्राज्यवाद ईसाई पादरियों को अपना स्वार्थ सिद्ध करने में जिसप्रकार उपयोग में लाता है वह ईसाइयत और पाश्चात्य सभ्यता पर बड़ा भारी कलंक है। पाश्चात्य साम्राज्यवादी यह दावा भरते हैं कि काली जातियों को सभ्य बनाने की हमारे पर एक बड़ी भारी जिम्मेवारी है।

पर वह सभ्यता का पाठ चीन को अफीम के गोले खिलाकर सिखाया गया है। हमें गुलाम बना कर रख कर सभ्य बनाने का ढोंग रचा जारहा है। इटली विषैली गैसों से अबीसीनिया को सभ्य बनाने का कार्य पूरा कर रहा है। पर उन के भिक्षुओं के सामने ऐसे आदर्श नहीं थे। उन के हृदय ऐसे नीचता पूर्ण न थे। वे अपने लिये संसार को छोड़ चुके थे। और हित के लिये उन्हों ने हिमालय की बर्फानी चोटियां लांघी। मार्ग की दुर्गम घाटियों और बीहड़ जंगलों को छाना तथा भारतीय संस्कृति की वैजयन्ती दूर दूर तक गाड़ी। बौद्धों के इस अनुकरणीय प्रक्रम को पीछे शैवों और वैष्णवों ने अपनाया। इन प्रयत्नों का परिणाम भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी प्रसार था। भारत वास्तव में ही विश्वगुरु की पदवी के योग्य बना। भूमध्य सागर से जापान तक और बैकाल से बालि तक भारतीय संस्कृति, सभ्यता और कला का विस्तार हो कर इस बृहत्तर भारत का निर्माण हुआ। भारतीय इतिहास पर बौद्ध धर्म का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव है।

बुद्ध और हिन्दू धर्म की शिक्षायें.

(श्री ब्र. वेदप्रकाशजी)

संसार के धार्मिक इतिहास में महात्मा बुद्ध का नाम प्रतिपदा की रात्रि में झिलमिल झिलमिल करके चमकते हुए नक्षत्रों के मध्य में सुशोभित पूर्णचन्द्र की भांति लोगों के लिये हितकारक रह चुका है। महात्मा बुद्ध ही इस दुनियां में प्रथम ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने कि उस कलिकाल में भी ब्रह्म तेज के सामने क्षात्र तेज को पराभूत कर दिया था। ईसा की पूर्वी छठी शताब्दी पूर्व का समय संसार के इतिहास में हमें सामाजिक और व्यक्तिगत आचार की हीनता को सुस्पष्ट रूप से व्यक्त करता है। लोग वास्तविक सनातन धर्म के मूलतत्वों को भुलाकर अन्धविश्वासों व निराधार रूढ़ियों के दास बन रहे थे। अन्य देशों की बात को जाने दीजिए, भारत भर में उस समय किस प्रकार से अनाचार व अत्याचार का बोलबाला था। यह कर्मकाण्ड का युग था। यान्त्रिक क्रियाकलाप ही तात्कालिक मोक्षप्राप्ति का सर्वोत्तम साधन समझा जाता था। यज्ञों का वास्तविक महत्व न समझकर मूढ़ व अज्ञानी जनता स्वाहा स्वाहा के अनवरत निनाद में घृत सामग्री के सहित सैकड़ों नहीं लाखों निरपराध व मूक प्राणियों को क्षण में बलि चढ़ा दिया करती थी। मानव-समाज की अन्तरात्मा भी उस समय तक एक ऐसी भयंकर बीमारी का शिकार बन चुकी थी, जिससे छुटकारा दिलवाने के लिए एक महान् सुधारक की आवश्यकता थी। कृष्ण भगवान् के 'यदा यदा हि धर्मस्य ——' के अटल नियम के अनुसार भगवान् 'बुद्ध' संसार को कोई दिव्य सन्देश सुनाने के लिए भगवान की सदा से प्यारी इसी भारत वसुन्धरा पर हिन्दु धर्म के नवम-अवतार के रूप में शाक्य प्रजातन्त्र की राजधानी कपिलवस्तु महानगरी में शाक्यराज्य के तत्कालीन निर्वाचित राष्ट्रपति महाराजा 'शुद्धोदन' की पटमहिषी 'मायादेवी' की कोख से राज्य के ६४ सुप्रतिष्ठित महाब्राह्मणों की पूर्वकथित बातानुसार अकस्मात् ही एक निशेष तेजस्वी वपु धारण किये हुए लुम्बिनी कानन में प्रकट हुए।

'बुद्धत्व' प्राप्ति के पश्चात् महात्मा बुद्ध ने सर्वप्रथम पुरातन काल से चले आते हुये इन्हीं धार्मिक अन्धविश्वासों पर, कुप्रथाओं पर कुठाराघात किया। अपनी साधना और तपस्या के बल से उन्होंने भारतवर्ष में ही नहीं, किन्तु भारत के बाहर भी संसार के असभ्यता के केन्द्र कहे जाने वाले उन बर्बर, तुर्क, काबुल, अफगान देशों में भी एक युगपरिवर्तन सा कर दिया था। यद्यपि यज्ञीय हिंसा के प्रबल पोषक इन अशुद्ध तथा मूढ़े (अत्यन्तवर्तिनी हिंसा धर्म साधनं प्रदीप-

राजदूत
का
बुद्ध जयन्ती अंक.

हिंसाकृत) और (वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति) इत्यादि अनुमानों को जड़ से उखाड़कर सम्पूर्ण विश्व को एकमात्र "अहिंसा परमो धर्मः" का पाठ पढ़ाया। संसार के इतिहास में यह धार्मिक सुधार एक उग्र क्रान्ति के रूप में यावच्चन्द्रदिवाकरौ अजर अमर बना रहकर भावी सन्तति द्वारा स्मरण किया जाया करेगा। इसकी सफलता के जहां अन्य अनेक कारण हैं, वहां उनमें से इस 'आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग' का पुरातन आर्य धर्म द्वारा सम्मत 'अष्टाङ्गिक योगमार्ग' से बहुत अंशों में [illegible] बिल्कुल मिलना भी एक कारण है। कहने को तो प्रायः प्रत्येक सुधारक अपने द्वारा प्रचारित किसी भी नये धार्मिक सम्प्रदाय के विषय में सदा से ही यह ढोल पीटता चला आया है कि मैं दुनियां में किसी भी नये सम्प्रदाय = पन्थ = मैजब आदि का प्रचार करने नहीं आया, अपितु उसी पुरातन सत्यधर्म का पुनरुद्धार मात्र करने को ही अवतीर्ण हुआ हूँ। पर यदि हम विवेचना पूर्वक संसार के धार्मिक साहित्य का अध्ययन करें तो हमें सुस्पष्टरूपेण **सब** तरफ से कुछ न कुछ पक्षपात की बू आये बिना न रहेगी। खेद है कि 'क्राइस्ट' और 'मुहम्मद' सरीखे महान् धर्मप्रवर्तक भी इस प्राकृत दोष से अछूते न बच सके।

धार्मिक साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से हम इसी अर्थात् (बौद्धधर्म की प्राचीन आर्य-धर्म के साथ एकता या मिलता) इसी गूढ़ तत्व की विवेचना करने के लिये ही यहां प्रस्तुत हुए हैं।

बौद्ध धर्म में भी हमारे प्राचीन काल से चले आते हुए वैदिक धर्म की सारभूत संहितात्रयी की भांति 'त्रि = तीन, पिटक = संहिताएं' ही धर्म का मूलभूत आधार मानी जाती हैं। आर्यों के ऋग्- यजुः- और साम की तरह ही इन त्रिपिटकों के भी तीन ही नाम 'विनय पिटक - सुत्तपिटक और अभिधम्म पिटक हैं। पुनः जिस प्रकार से हमारे यहां शुक्ल यजुर्वेद, कृष्णयजुर्वेद, तैत्तिरीय शाखा, कठशाखा आदि शाखा प्रशाखाएं हैं, ठीक तदनुरूप ही बौद्धसाहित्य के इन महान ग्रन्थों त्रिपिटकों में भी 'सुत्त पिटक' की दीर्घनिकाय, मज्झिम निकाय, संयुत निकाय, अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय भेद हैं। इसी खुद्दक निकाय में से १५ शाखा प्रशाखाएं फैलकर इस विस्तृत साहित्य के भिन्न २ अंगों पर बड़ा ही महत्वपूर्ण

हिन्दूधर्म और बुद्ध धर्म की शिक्षायें

प्रकाश डालती हैं। आगे चलकर वैदिक धर्म के शाक्त, वैष्णव, वाममार्ग, जैन आदि मतों की तरह ही इस 'सद्धर्म' के सर्वास्तिवाद, आर्य सर्वास्तिवाद और मूल सर्वास्तिवाद आदि वाद प्रचलित हुये। क्रमशः इन्हीं के अनेक रूप रूपान्तर होते होते ये ही लोग 'वैभाषिक' कहलाए। कुछ और आगे चलकर इनमें से ही पुनः हीनयान और महायान = अर्हत्‌यान, प्रत्येक बुद्धयान, सम्यक् सम्बुद्धयान आदि नाना भेद बने। इन सबके विषय में कुछ भी लिखने से हम प्रस्तुत विषय से बहुत दूर चले जावेंगे। अतः इसे अब यहीं छोड़कर हम अपने विषय की ओर आते हैं।

'गौतम' किसी नये धार्मिक सम्प्रदाय का बखेड़ा दुनियां में नहीं पैदा किया। इस बात को सिद्ध करने के लिए हम उन्हीं शिष्यों के अन्तर्गत सूक्तों की साक्षी को प्रमाणरूप से पाठकों के सन्मुख उपस्थित करते हैं। महापरि निर्वाण सूक्त के चतुर्थ अध्याय में 'महात्मा बुद्ध' के कार्य के सम्बन्ध में लिखा है कि "हे पूजनीय गौतम! यह सर्वश्रेष्ठ है कि जिस तरह कोई फेंकी हुई चीज को उठा देता है, या छिपी हुई चीज को पुनः प्रकट कर देता है, या ऐसे व्यक्ति को जो अशुद्ध-मार्ग पर चला जा रहा हो - ठीक मार्ग बता देता है या अन्धकार में तैलप्रदीप प्रकाशित कर देता है। जिससे जिनकी आंखें हैं, वे वस्तुओं को देख सकें, ठीक उसी प्रकार 'बुद्ध भगवान्' की कृपा से सत्यधर्म का पुनः प्रकाश कर दिया गया है। इस वाक्य से स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'महात्मा बुद्ध' का उद्देश्य कोई पृथक् सम्प्रदाय खड़ा करना नहीं था। वह केवल प्राचीन सत्यमार्ग का ही प्रचार करना चाहते थे।

भगवान् 'बुद्ध' के सम्पूर्ण प्रवचनों का उद्देश्य आत्मनिर्वाण और आत्मसंयम:(यम + नियम + आसन + प्राणायाम + ध्यान + धारणा + योग + समाधि) को छोड़ कोई दूसरी व तीसरी वस्तु नहीं है। एवं हम आर्यों का वैदिक जीवनोद्देश्य भी तो यही है कि पवित्र जीवन = ब्रह्मचर्य द्वारा विषयों से मन + इन्द्रियों को पृथक् करके मोक्षप्राप्ति का यत्न करना। इससे ज्यादा तो शायद आजतक किसी भी विद्वान् ने इस विषय में मनु से लेकर महर्षि पर्यन्त कुछ भी अधिक नहीं कहा। भेद सिर्फ इतना ही है कि हम 'बुद्ध' के 'निर्वाण' को मोक्ष यह नाम देते हैं। दोनों धर्मों की प्राप्य वस्तु और उसकी प्राप्ति

राजहंस का
बुद्ध जयन्ती अंक.

के साधकों में भी दूसरे शब्दों में दोनों धर्मों के साध्य-साध्य में और साधन-साधन में किञ्चितमात्र भी भेद प्रतीत नहीं होता। यह सब उस बुद्धमत को आधार मानकर तुलना की जा रही है जो कि शुद्धमूल पाली ग्रन्थों = (त्रिपिटकों) में स्वयं भगवान् द्वारा वार्तालाप के रूपों में उपदिष्ट है। क्योंकि बाद में तो लोग अर्थात् बुद्धमत के अन्धानुयायी अहिंसा, निर्वाण आदि शब्दों के धात्वीय अर्थ लेकर और नवीन बौद्ध दर्शनों में शून्यवाद, अभाववाद, क्षणिकवाद, सर्वं दुःखं दुःखम् आदि मिथ्या और प्रत्यक्षविरोधी वादों और सिद्धान्तों की अपुष्ट पुष्टि करके न जाने क्या क्या महात्म्य अनर्थ कर बैठे हैं। अधिक क्या कहें सुना जाता है कि वेदान्तियों का ब्रह्मवादी 'वेदान्त दर्शन' और अनीश्वरवादी सांख्य भी इन्हीं बौद्ध दार्शनिक भ्रमजालों में फंसकर दुनिया को निष्क्रिय बनाने में बौद्धों के परम सहायक हुए हैं। परन्तु गम्भीर दृष्टि से पुरावृत्त का अध्ययन करने वाला कोई भी विद्यार्थी इस बात के मानने से कभी इन्कार नहीं कर सकता कि 'श्रमण गौतम' ने कोई नया मार्ग न दिखाकर वही गीतासम्मत प्रायतः सनातन काल से चले आते हुए सर्वजनमान्य 'श्रेय मार्ग' का ही उपदेश दिया है।

—: बुद्ध की शिक्षाओं का वैदिक मन्तव्यों से साम्य :—

उद्देश्य— मानव जाति के वैयक्तिक तथा सामाजिक आचार विचार और यथासम्भव व्यवहार को भी ऊंचा बनाना मानते ही था। वे मानवीय दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति और परमसन्तोष का साधन 'उच्च आचार-विचार' को ही मानते थे। 'बुद्ध' की इन शिक्षाओं का पुरातन वैदिक शिक्षाओं से लेशमात्र भी विरोध सिद्ध नहीं हो सकता। वास्तव में प्रत्येक सुधारक स्वसामयिक अवस्थाओं के अनुसार धर्म के किसी खास खास अंग पर ही विशेषतया जोर दिया करता है। तदनुसार उन्होंने तत्कालीन याज्ञिक सम्प्रदाय के विरुद्ध अपना परमपुनीत जनसामान्य के लिए अत्यावश्यक 'अहिंसा का मार्ग' प्रदर्शित किया। इसके अतिरिक्त 'बोधिसत्व' ने अन्य कुछ भी न किया होता, तो भी वे अन्य अनेक सुधारकों से कई बातों में आगे थे। लेकिन भगवान बुद्ध का क्षेत्र औरों की भांति इतना सीमित इतना परिमित न था। उन्होंने मानवीय जीवन के उपयोगी प्रायः प्रत्येक आध्यात्मिक और आधारभूत मौलिक तत्वों को

बुद्धधर्म और हिन्दू धर्म की शिक्षायें

विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित किया है। उन्होंने स्वसामयिक जिन परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर जिन जिन धार्मिक विषयों को विशेष महत्व दिया है और शेष पर कुछ उदासीनता सी दिखाई है तो इससे भी हमारे प्रतिपक्षी ज्यादा से ज्यादा उन्हें संकुचित क्षेत्रीय ही कह सकते हैं। परन्तु भारतीय शिक्षाओं का विरोधी नहीं।

साम्य :— जीवात्मा का अस्तित्व = धम्मपाद में अनेक आध्यात्मिक स्थलों में 'अत्ता' शब्द पाली लिपि में प्रयुक्त हुआ है। जिसे कि आधुनिक बड़े २ भाषाविज्ञों ने संस्कृत के 'आत्मा' शब्द का ही पर्याय स्वीकार किया है। एक प्रकरण में महात्मा बुद्ध कहते हैं कि "आत्मा से ही कोई पाप करता है, आत्मा के कारण ही कोई कष्ट भोगता है, आत्मा से ही कोई पाप से शुद्ध रहता है, और आत्मा द्वारा ही कोई पवित्र हो-जाता है, आत्मा स्वयं ही अपने को पवित्र या अपवित्र करती है। कोई किसी दूसरे को पवित्र नहीं कर सकता।

साहित्यरचना साम्य :— 'बुद्ध' ने अपनी शिक्षाओं का मूलाधार वैदिक साहित्य को ही माना है। "अभिवादन शीलस्य ——" मनु महाराज के इस सुप्रसिद्ध श्लोक का भावानुवाद ही नहीं किन्तु वाक्य रचना भी तत्सदृश ही है- 'अभिवादन सीलस्स निच्चं बुड्ढापचायिनः।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं॥' धम्मपाद एवं 'न तेन वुड्ढो भवति येनास्य पलितं शिरः' इत्यादि को भी पूर्ववत् ही ग्रहण कर लिया गया है।

पुनर्जन्म :— ऐसा मैंने सुना - एक बार भगवान् श्रावस्ती जेतवन (आराम) में विहार कर रहे थे। उस समय अपने शिष्यों को उपदेश करते हुवे भगवान् बोले कि भिक्षुओ! "इन चार महान् सत्यों को (अज्ञान के कारण) न समझने के कारण ही हमें इतने अधिक जन्म लेने पड़े हैं। इसी कारण तुम और मैं पुनर्जन्म के इस दुःखमय मार्ग में बहुत लम्बे काल से चले आ रहे हैं। अन्यत्र इससे भी ज्यादा स्पष्ट रूप से - हे गृहस्थो! सदाचारी पुरुष अपने सदय व्यवहार से पांच प्रकार के लाभ प्राप्त करता है। उनमें से एक यह है कि "वह मृत्यु के अनन्तर किसी उच्चयोनि में जन्म लेता है। सच्चे ब्राह्मण की परिभाषा करते हुवे भगवान् ने बलपूर्वक द्वारा स्थान २ पर पूर्वजन्म को माना है।

राजहंस
का
बुद्ध जयन्ती अंक

मोक्ष:— जिसप्रकार हमारे हिन्दू दर्शनों में {(दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्याज्ञानानां उत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः) = तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः} दुःख के अत्यन्त अभाव को ही मोक्ष माना है। ठीक उसी प्रकार से एक वार्तालाप के प्रसङ्ग में भगवान् बोले आनन्द! "बहिन नन्दा, उन पांचों बन्धनों को जिनके द्वारा संसार के ये निवासी बंधे हुए हैं पूर्णरूप से तोड़ देने के कारण स्वर्गलोक में चली गई है। वह सदा के लिये चली गई है अब वह कभी नहीं लौटेगी। महापरिनिर्वाण सूत्र - २अ०, व ७॥ यहां पर प्रसङ्ग वश लगे हाथ निर्वाण के विषय में भी कुछ कह देना अनुपयुक्त नहोकर आत्मा व पुनर्जन्म की सत्ता को सिद्ध करने में परम सहायक ही होगा। और उससे यह भी स्पष्ट हो जायगा कि 'सदा के लिये जाना' इससे भगवान् को क्या अभिप्रेत है सेलसुत्त में अपना - वर्णन करते हुए भगवान् बोले "मार की सेना का मैं ध्वंस कर चुका हूँ। मैं ब्रह्मभूत हूँ, अतुलनीय हूँ, सब शत्रु (काम + क्रोध आदि) मेरे आधीन हैं। मैं आनन्द मय हो गया हूँ। इससे प्रतीत होता है कि ब्रह्मभूत होना या निर्वाण का तात्पर्य समाप्त हो जाना या 'बुझ जाना' बुद्ध को अभीष्ट नहीं है।

जातकग्रन्थों में 'निर्वाण' शब्द की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है। यथा- (शब्दोऽयं द्विधा भिन्नः - एको निः - अन्यश्च वाणः) इसका यह तात्पर्य हुआ कि मनुष्य ज्यादा से ज्यादा अपनी इच्छा का नियमन द्वारा क्षय करे। बुद्ध 'निर्वाण' को जीवन रहते हुवे भी मानते थे। अपनी कठोर तपस्या के पश्चात् काशी में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि "मैंने 'निर्वाण-पद' प्राप्त कर लिया है, अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा, यह मेरा अन्तिम जन्म है।"

पुरातन वैदिक साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् डा. कुमारस्वामी उपनिषदों के आधार पर 'निर्वाण' शब्द से 'पूर्ण आत्मबोध' का भाव दर्शाते हैं। अतः निर्वाण अवस्था में केवल वृत्तियों का ही विनाश होता है तब बचा क्या रहता है = आत्मा (प्राचीन बौद्धमतानुसार) क्यों कि आधुनिक बौद्ध तो आत्मा की सत्ता को मानते ही नहीं। बौद्ध निर्वाण का वास्तविक स्वरूप तो सत्तावान् और आनन्द मय है। वह पूर्ण अभावात्मक नहीं है। अन्यत्र भी गौतम ने कहा है कि 'अर्हत् और सन्त के मोक्ष द्वारा निर्वाण प्राप्त करलेने का यही अभिप्राय है कि उसमें से राग, द्वेष और मोह की ज्वालाएं पूर्णतया शान्त हो जाती हैं। निर्वाण केवल नाश नहीं है। न उससे कम और न उससे अधिक। उसके पर्याय वाची शब्दों पर विचार करने से इसका असली स्वरूप और भी ज्यादा स्पष्ट हो जाता है।

हिन्दू धर्म और बुद्ध धर्म की शिक्षायें

निर्वाण = दुःख का विनाश = पाप की निवृत्ति = अविनाशी - स्थिर - अपने अकेले में ही पूर्णता - और स्थिर सुख। अतः इतनी सब व्याख्या के उपरान्त हम इस निश्चित परिणाम पर पहुंचे कि पूर्ण जीवन मुक्ति या मोक्ष प्राप्त करने का ही नाम निर्वाण है। वैदिक मोक्ष = मुक्ति का भी तो ठीक यही स्वरूप है।

सृष्टि उत्पत्ति :— हमारे उपनिषदों में 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः — — —) इसीप्रकार से महापरिनिर्वाण सूक्त में भी प्रसङ्गवश भूडोल के कारणों का वर्णन करते हुए 'बुद्ध' ने भी इसी सिद्धान्त को स्वीकृत किया है — वे कहते हैं कि - यह पृथ्वी पानी पर आश्रित है - पानी वायु पर - वायु - आकाश पर —— इत्यादि।

वैदिक वर्णव्यवस्था :— महात्मा बुद्ध ने अपने समय की बढ़ी हुई अप्राकृतिक विषमता का तथा जन्ममूलक जातपात का ही घोर विरोध किया है। परन्तु वह वैदिक वर्णव्यवस्था के विरोधी नहीं थे। भगवान ने वैशाली में उपदेश लेने को आये भिक्षुणियों के काले, सुनहर, लाल और श्वेत वस्त्रों को देख कर उन्हें क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण कहा है। इतना ही नहीं भगवान ने स्पष्ट शब्दों में गुण कर्मानुसार ही वर्ण मानने का आदेश दिया है। इस सम्बन्ध में उनका कथन है कि — 'जन्म के सम्बन्ध में मत पूछो, परन्तु आचरण के सम्बन्ध में पूछो। यह एक तथ्य है कि लकड़ी से आग उत्पन्न हो जाती है। (इसीप्रकार) एक नीच कुल में उत्पन्न हुआ हुआ दृढ़ निश्चय मुनि भी पाप छोड़कर कुलीन बन सकता है। सुत्तनिपात - सुन्दरीक भारद्वाज सुत्त, वाक्य ९ ॥

कोई केवल जन्म से ब्राह्मण नहीं हो सकता, और न कोई ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से अब्राह्मण होता है। अपने कर्मों से ही कोई ब्राह्मण या अब्राह्मण बनता है।

बहुत समय से अज्ञानियों के भाव ही स्वीकार किये चले आ रहे हैं। अज्ञानी लोग हमें कहते हैं कि एक व्यक्ति जन्म से ही ब्राह्मण होता है। हे वासेत्थ ! किसी माता विशेष के पेट से जन्म लेने के कारण मैं किसी को ब्राह्मण नहीं कहूंगा। चाहे वह कितना ही धनी क्यों न हो। उसे भोवादी ही कहा जा सकता है। वह व्यक्ति जिसके पास कुछ भी नहीं है, और जो किसी वस्तु पर अपना ममत्व कायम नहीं करता, मैं तो उसी को ब्राह्मण कहूंगा। कोई मनुष्य अपने सफेद बालों या कुल अथवा जन्म से ही ब्राह्मण नहीं बन सकता। जो सच्चा है और धर्माचरण करता है, वही ब्राह्मण है। वेदकिये यह सब कितना सुस्पष्ट है।

राजेंद्र
का
बुद्ध जयन्ती अंक.

"जन्मसे कोई नीच नहीं होता और न जन्म से ब्राह्मण ही होता है। कर्मसे ही कोई नीच होता है और कर्मसे ही ब्राह्मण होता है। सच्चे ब्राह्मण होने की जो कसौटी महात्मा बुद्ध ने मानी है उसी का ही कुछ और आधिक स्पष्ट शब्दों में हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने प्रतिपादन किया है। अन्य अनेक तात्कालिक कार्यों का विधान करते हुए 'बुद्ध' ने ब्राह्मणों के लिये विशेषरूप से यज्ञ करना और वेद पढ़ना आदि मुख्य कर्तव्य बताया है। इसके साथ ही सुन्दरिक भारद्वाज सुत्त में भारद्वाज नामक एक याज्ञिक ब्राह्मण द्वारा बुद्ध को ही सच्चा ब्राह्मण मानने पर यज्ञशेष देना। और उसी समय वेद, गायत्री = उपासना और २४ वर्णों वाली सावित्री, यज्ञ, वर्णव्यवस्था आदि अनेक सैद्धान्तिक विषयों पर वैदिक विचारों से मिलते जुलते ही विचार प्रकट किये हैं। इसी प्रकरण में अग्नि पूजा की सफलता को बतलाते हुवे 'बुद्ध' को वेदगू = वेदज्ञ भी कहा गया है। यहां पर वेदों का तात्पर्य उन पुस्तक विशेषों से नहीं है जो कि आजकल वैदिक संहिताओं के रूप में मिलती हैं। किन्तु गौतम में वेदज्ञों के लक्षण पाकर ही सुन्दरिक भारद्वाज ने उपरोक्त वाक्य कहे हैं।

एवं एक बार भारद्वाज और वासिष्ठ मुनि में ब्राह्मणादि वर्णों के गुणकर्मानुसार या वंश परम्परागत रूप से होने के विषय में वाद उपस्थित हुआ। वे 'बुद्ध' के पास इसकी यथार्थता जान लेने = निर्णय कराने आये। बुद्ध ने कहा कि — "पशु पक्षी आदि विभिन्न जातियों के समान मनुष्य मनुष्य के अंगों में भेद नहीं है। मोह, द्वेष और अज्ञान रहित अपमान से दुःखी न होने वाला = वैदिक स्मृतियों में भी (सन्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ——) विरोधियों को सहन करने वाला, सत्यवादी, निर्द्वन्द्व पुरुष कर्म से ही ब्राह्मण होता है।

इसी प्रकार से एक बार वे भिक्षा मांगते हुवे 'वृषलक' कहे जाने पर बोले कि वृषल = नीचवर्ण के हैं जो क्रोधी, हिंसक, ऋण न चुकाने वाले, धन से झूठी साक्षी देने वाला, स्त्रियों पर बलात्कार करने वाला, माता पिता की सेवा न करने वाला, ब्राह्मण को दम्भकर ठगने वाला और जो पाप में बेशर्म हो। एक बार एक चाण्डाल वंश में उत्पन्न मातंग था जो वासना रहित हो ऊंचे काम करता हुआ ब्राह्मण बना। बहुत से ब्राह्मण क्षत्रिय आदि उसकी सेवा करते थे। अतः कर्म से आदमी ब्राह्मण या पतित बनता है। सुत्तनिपात के आधार पर।

हिन्दू धर्म और बुद्ध धर्म की शिक्षायें

निष्काम कर्म:— सभीय सुत्त में 'महात्मा बुद्ध' सभीय को उपदेश देते हैं — "जिस प्रकार सुन्दर कमल पानी में रहते हुवे भी उससे संसक्त नहीं होता (भगवद्गीता में भी - पद्मपत्रमिवाम्भसा) उसी प्रकार हे सभीय! तुम भी बुराई या अच्छाई से निर्लिप्त रहो।

ब्रह्मचर्य:— जहां वैदिक धर्म आबाल वृद्ध वनिता ~~सब~~ तक के लिये ब्रह्मचर्य को निखिल दृष्टिकोणों से उपयोगी बताता है। वहां 'भगवान् बुद्ध' ने भी प्रायः हर अपने प्रत्येक प्रवचन में प्रत्येक भिक्षु अथवा कोई मानव के लिये 'ब्रह्मचर्य' को ही सर्वोत्तम वस्तु माना है। और इसीलिये 'बुद्ध' भिक्षु संघ की तरह भिक्षुणी संघ बनाने के पक्ष में कभी न थे। इसीलिये ही उन्होंने आनन्द के आग्रह से विवश होकर भिक्षुणी संघ की आज्ञा देते हुवे ८ विविध शर्तों को भिक्षुणियों के समक्ष रखा था। पर वे इतने से भी सन्तुष्ट न थे। उन्होंने सद्धर्म की आयु को उसी दिन से अपने पूर्व अनुमान की अपेक्षा आधा जान लिया था।

सावित्री छन्द और यज्ञ— भगवान् ने महावग्ग में कहा है कि यज्ञों में प्रधान अग्निहोत्र है और 'सावित्री छन्दों में प्रमुख'। वैदिक साहित्य में भी इसी प्रकार से गायत्री को ही सर्वोत्कृष्ट छन्द माना गया है। कृष्ण भगवान् ने छन्दों में अपनी विभूति बताते हुवे गायत्री में ही मानी है (छन्दसां गायत्री चाहम्)।

योगाभ्यास— योगदर्शन के पांच क्लेशों (अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः) को भी बुद्ध ने स्वीकार किया है और इसी प्रकार से योग के लिए आवश्यक साधन (यम + नियम) का भी धम्मिक सुत्त में भगवान ने भिक्षुओं को उपदेश दिया है।

वेद और ईश्वर विषयक विचार:— तेविज्ज वाच्छगोत्त सुत्त में महात्मा बुद्ध के लिये तेविज्ज = वेदज्ञ = वेदज्ञ यह नाम आया है। इसका यह तात्पर्य है कि 'महात्मा बुद्ध' को वेदज्ञ भी कहा जाता था। वासेट्ठ से एक वार्तालाप के प्रसङ्ग में 'ये ब्राह्मण मलिन हृदय के हैं, वासनाओं से शून्य नहीं और यह [illegible] अपनी मृत्यु के अनन्तर उसमें ईश्वर में = ब्रह्म में नहीं मिल सकते। श्रमण गौतम ही ईश्वर के साम्य प्राप्त करने के साधन जानता है। हे वासेट्ठ! मैं ब्रह्म को जानता हूँ, ब्रह्म के जगत् को जानता हूँ और उस मार्ग को भी जानता हूँ, जिसका अनुसरण करके ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है। इसे मैं उसी प्रकार से जानता हूँ जिस प्रकार कि एक ब्रह्म में साम्य प्राप्त किया हुआ और उसके जगत् में उत्पन्न हुआ मनुष्य ब्रह्म को

राज हंस
की
बुद्ध जयन्ती अंक.

जानता है। यह तो हुई ईश्वर का पूर्ण विजय करने महात्मा बुद्ध की व्याख्या। अब वेदों को विजय में भी सुनिये — वह व्यक्ति जिसे 'त्रयी-विद्या' अर्थात् वेदों का ज्ञान है, जो शान्त है, जिसने पुनर्जन्म का नाश कर दिया है। हे वासेट्ठ! उसको वही वास्तव में बुद्धिमान ब्राह्मण और शान्त है। मूलपाली में वेदज्ञ और श्रोत्रिय के लिये क्रमशः 'वेदगु' और सोत्तिय शब्द आये हैं। ब्राह्मण वह है जिसने सम्पूर्ण पाप को दूर कर दिया है, जो मलरहित है, पवित्र आयु व्यतीत करता है और जो वेदों में पूर्णता को पहुँच गया है। उसका जीवन ब्रह्मचर्यमय होता है और वह पवित्र आचरण करता है।

अब यह उपरोक्त बखान इतना ही स्पष्ट है जितना निःसन्देह कालिक सूर्य के प्रकाश में यह चराचर जगत्। 'बुद्ध' ब्रह्म = अर्थात् ईश्वर के विरोधी नहीं थे। अपितु तत्कालीन ब्राह्मण कहलाये जाने वाले जनसम्प्रदाय के पाखण्ड के विरोधी थे। जब वह स्वयं अपने आपको ब्राह्मण और ईश्वर प्राप्ति के मार्गों का ज्ञाता कहते हैं तब उन्हें नास्तिक या अनीश्वर मत का संस्थापक कहना एक महात्मा के साथ सरासर अन्याय करना ही होगा।

उपनिषद्‌ लेख को समाप्त करते हुए अन्त में हम बौद्धमत के कुछ पारिभाषिक शब्दों का तत्त्वदर्शिक और लौकिक साहित्य में आए शब्दों के साथ समता दिखलाके इस निबन्ध की इति श्री करेंगे।

बुद्ध: — जो कोई काल का पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है, नष्ट होने और पुनः प्रकट होने को नष्ट कर देता है, जिसे गन्दा नहीं किया जा सकता, जो पापरहित है, जिसने पूर्व जन्म के बन्धन को तोड़ डाला है। उसे बुद्ध कहते हैं। वैदिक परिभाषा में ऐसे व्यक्ति को जाग्रत कहा जाता है।

श्रमण: — जो शान्त है अच्छे और बुरे दोनों से रहित है, जिसे कलंकित नहीं किया जा सकता, जिसने इस और दूसरे संसार को समझ लिया है, जन्म और मृत्यु को जीत लिया है — ऐसा व्यक्ति 'श्रमण' कहलाता है॥ श्रमण = सन्यासी।

क्षेत्रज्ञ: — बुद्ध ने कहा है सौमीय! जो व्यक्ति देवलोक, मनुष्यलोक और ब्रह्मलोक इन तीनों की पूर्ण परीक्षा करके इनके बन्धनों से सर्वथा विमुक्त हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को क्षेत्रज्ञ = क्षेत्रज्ञ कहते हैं। गीता में भी — एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥

वेदज्ञ: — बुद्ध ने कहा है सौमीय! जो व्यक्ति श्रमण और ब्राह्मणों से ज्ञात

बुद्ध धर्म और हिन्दू धर्म की शिक्षाएं

सम्पूर्ण अनुभवों का विजय प्राप्त कर लेता है। जो काम और अनुभूति से आज़ाद है। वह 'केवल' कहे जाने योग्य है।

मौनिय:— जो कोई व्यक्ति इस संसार के पूर्ण धर्मों का अध्ययन करके भलाई ग्रहण करता है और बुराइयों से रहित रहता है, वह समझा जाता है, जो विजयी है, संदेह छोड़ते हैं, स्वतन्त्र है, समता के पक्ष से बचा हुआ है। वही मौनिय - मौनिय कहाता है।

आर्य:— जिस व्यक्ति ने अपनी इच्छाओं और वासनाओं को नष्ट कर दिया है, जो बुद्धिमान है, और पुनः गर्भ में प्रवेश नहीं करता, जिसने क्रियात्मक चिह्न को अपने से पृथक् कर दिया है। लोभ के बीज को खो दिया है। जो पुनः काल के बन्धन में नहीं पड़ता। वह आर्य है।

परिव्राजक:— जिसने ऐसे सम्पूर्ण मार्गों का त्याग कर दिया है, जिनका परिणाम दुःख है, जो ऊपर, नीचे इधर उधर और मध्य में पूर्ण ज्ञान लेकर घूमता है, जिसने धोखा, अधिकार लोलुपता, काम क्रोध और नामरूप का पूर्ण अन्त कर दिया है, जिसने उच्चतम लाभ प्राप्त कर लिया है वह परिव्राजक कहलाता है। मनुस्मृति में भी केवल शब्दभेद द्वारा यही भाव प्रकट किया गया है। इसकी समानता सम्पूर्ण लोक द्वारा बौद्धधर्म और वैदिक धर्म की एकता साधक अनेक बातें - सिद्धान्त आधार मिलते हैं अतः हम निःसंकोच होकर यह कह सकते हैं कि बुद्ध धर्म का वैदिक धर्म से अत्यधिक साम्य है।

अन्त में आनन्द मग्न उस महान् आत्मा के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने को इच्छुक हैं। यद्यपि बोधिसत्व का भौतिक शरीर आज से कई शताब्दी पूर्व ही इस संसार से अदृश्य हो चुका है तथापि 'निर्वाण' = मुक्ति के पश्चात् अनन्त काल (बुद्ध कल्पना सृष्टि उत्पत्ति + प्रलय के बाद) परमानन्द लाभ के अनन्तर पुनः इस धराधाम में अवश्यमेव लोकोपकारार्थ अवतीर्ण होंगे। यह हमारा पूर्ण विश्वास है। हम जो आज महात्मा बुद्ध की बरसी मना रहे हैं उन्हें आज के दिन का एकमात्र यही सन्देश है कि हम सब उस महात्मा के उपदेशों ही पर चल कर बनने का यत्न करें। तभी यह जयन्ती उत्सव मनाना सच्चे अर्थों में हमारे लिये उपयोगी व हितकर सिद्ध हो सकता है। इत्यलम् ॥

८.५.३६

রাজহংস.

বা

দুই জাপানী অংক.



ऋतु— गर्मी का प्रकोप बढ़ गया है। दिनभर लू बहती रहती है। कभी कभी धूल भरी आंधी भी उत्पात मचा जाया करती है। पर रात होते होते यह प्रकोप शान्त होजाता है और सोने में कोई बाधा नहीं होती।

पढ़ाइयां— आर्य प्रतिनिधि सभा की अर्द्ध शताब्दी से लौटने के बाद नये सत्र की पढ़ाइयां शुरू हो गई हैं। गर्मी की प्रचण्डता को देख विद्यालय के समयविभाग में फिर प्रतीक्षित परिवर्तन

राजहंस
का
बृहद्-जयन्ति-अङ्क

कर दिया गया है। इस वर्ष विद्यालय के समय विभाग में एक आवश्यक परिवर्तन किया गया है कि विद्यालय का समय ६ से १२ न होकर निम्न दो भागों में बांट दिया गया है। (क)

(i) प्रातः – ६¼ से ११ तक.

(ii) दुपहर – ४ से ५ तक.

उपरोक्त परिवर्तन स्वास्थ्य-विकास की दृष्टि से किया गया है। गत इससे समय विभाग के अनुसार रोटी का समय करीबन १२ बजे के ४५ मिनट पड़ता था। यह समय अस्वाभाविक है, और प्रायः चायपानी आदि के सेवन कर लेने से रोटी का कम खाया जाना आदि कारण बातों के स्वास्थ्य के लिये अहितकर

निश्चय कर यह परिवर्तन कर दिया गया है।

"पाठ्यक्रम" में परिवर्तन की दृष्टि से यह सत्र अतीव महत्व का है। सत्रारम्भ से पूर्व शिक्षा पटल ने कई आवश्यक परिवर्तन पाठ्यक्रम में कर दिये हैं। यह परिवर्तन वेद महाविद्यालय और ~~आयुर्वेद~~ साधारण महाविद्यालय को ~~दृष्टि~~ दृष्टि में रखकर किये गये हैं। शिक्षा पटल कार्यालय से निम्न परिवर्तनों की सूचि आई है -

(i) दर्शन (ख) से अन्तर संस्कृत को दे दिये गये हैं।

(ii) संस्कृत का नवीन कोर्स बनाया गया है। संस्कृत से अन्तरों में वेद + साधारण महाविद्यालय की पढ़ाई इकट्ठी होगी।

(iii) (क) आर्य भाषा अलग विषय समझा जायगा।

राज हंस
का
बुद्ध-जयन्ति-अङ्क

(ख) पाठक्रम सर्वथा नवीन बनाया गया है।

प्रस्तोता कार्यालय से और भी निम्न सूचनायें प्राप्त हुई हैं—

(१) आयुर्वेद महाविद्यालय की पाठविधि सर्वथा नवीन रूप में बनाई जा रही है।

(२) नवम दशम श्रेणियों की अलग अलग परीक्षा होगी।

(ख) पाठविधि भी बदल दी गई है।

(३) English की पाठविधि बदल दी गई है।

(ख) अलग विषय समझा जायेगा।

परीक्षा-परिणाम

संवत १९९८ की वार्षिक परीक्षाओं का परिणाम इस मास के इसी सप्ताह के अन्त में प्रकट हो चुका है। अन्य सालों

की अपेक्षा इस साल का परीक्षा परिणाम अच्छा नहीं कहा जा सकता। तब भी पूर्णतया असन्तोषजनक भी नहीं है। गत साल पाठविधि में परिवर्तन करने से अर्थात् "अंग्रेजी" के विषय को बढ़ा देने से ब्रह्मचारियों पर स्वाध्याय एवं पाठ का काफी भार बढ़ गया था। इसी प्रकार परीक्षा पूर्वापेक्षया एक मास पहले हो जाने से पर भी गतवर्षों के समान परीक्षाओं के नज़दीक आ जाने पर ही पढ़ाई शुरू करने की वजह से सन्तोषजनक यह परिणाम आया है। इस साल का परीक्षा परिणाम डंके की चोट से कहता है कि हमें परीक्षा के दिनों में ही तैयारी करने के इरादे से सालभर पढ़ाई में पर्याप्त ध्यान न देने की प्रवृत्ति को बदलने की आवश्यकता है। विशेषकर भाषाओं की कमजोरी को तो सालभर का अभ्यास ही पूर्ण कर सकता है। आशा है कुल-बन्धुगण हमारी प्रार्थना पर ध्यान देंगे। और विचार करेंगे।

राजहंस
का
बृहद्-जयन्ती-अङ्क

अधिकारी श्रेणी का परीक्षा परिणाम

इस वर्ष अधिकारी परीक्षा में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के २४ और गुरुकुल सूपा के ७ ब्रह्मचारी इस प्रकार मिलाकर कुल ३१ ब्रह्मचारी बैठे थे। इस का परिणाम भी इसी मास के तृतीय सप्ताह में निकल चुका है। इन ब्रह्मचारियों में से १३ उत्तीर्ण, ६ पुनः परीक्षा एवं ६ सर्वथा अनुत्तीर्ण रहे। इस वर्ष अधिकारी का परिणाम सन्तोषजनक नहीं है। परीक्षा परिणाम देखने से साफ साफ पता चलता है कि भाषाओं की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। आशा है आगे आने वाले बन्धुगण, इस परिणाम से शिक्षा ग्रहण करते हुए भाषाओं की ओर ध्यान देंगे। इसी प्रकार गणित पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। आज तक केवल व्याकरण के परिणाम के कारण ही प्रायः परीक्षा परिणाम खराब आता रहा है। पर इस साल व्याकरण का परिणाम बहुत ही अच्छा आया है। क्या हम आशा करें कि जिस प्रकार व्याकरण में उन्नति की है उसी प्रकार उपरोक्त विषयों में भी उन्नति करेंगे

गुरुकुलीय-जगत

एक कुलसेवक की विदाई

हम कुलवासियों के दिलों में दिनों में दुःख सुख का विचित्र सम्मिश्रण है। दुःख इसलिये है कि इन दिनों गुरुकुल के सुयोग्यतम कार्यकर्त्ताओं में से एक अपने सेवा कार्य की नियत अवधि समाप्त कर के हमारे बीच में से विदाई ले चुके हैं। और सुख इस लिये है कि उन मान्य सज्जन ने अपना कार्य कितनी सफलता पूर्वक कुल की तन मन धन से सेवा करते हुवे समाप्त किया है। आज से १४ वर्ष पूर्व वे हमारे बीच में एक प्यार के सन्देश के साथ आये थे। उन का नाम है "श्री पं. अमरनाथ, सप्रू"। जबसे आपने इस कुल का तथा कुलपति का नाम सुना था तभी से आपने अपने अपने सुखों को लात मारकर आप कुल की सेवा में लग गये थे। इस अर्से में उन्होंने कितनी तत्परता से और धर्मपरायण हो कर कार्य किया है - इस से सब कुलवासी परिचित ही हैं। वे इस गुरुकुल रूपी विशाल इमारत के एक सुदृढ़ स्तम्भ थे। आज वे हम से जुदा हो चुके हैं। पर हम जानते हैं कि वे बड़े सहृदय और दयालु हैं।

वे गुरुकुल छोड़कर भी इसे अपना बनाये रखेंगे। हमें पूर्ण आशा है कि वे अपना प्रेम भरा हाथ कभी भी इस कुल के उपर से नहीं उठायेंगे और ने हमारे कमजोर कार्यालय के लिये हमेशा आधार स्तम्भ बने रहेंगे।

नवागन्तुक :—

अधिकारी परीक्षानन्तर गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के १५ ब्र. ब्रह्मचारियों की एक मण्डली इस मास के चतुर्थ सप्ताह के शुरु में आ पहुंची है। इन नवागन्तुक बन्धुओं का खूब अच्छी तरह से शानदार एवं हास्य से पूर्ण स्वागत महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की ओर से किया गया। इस का श्रेय विशेष कर द्वादश श्रेणी के ब्रह्मचारियों को ही दिया जा सकता है। हमारे उपरोक्त बन्धुओं ने इन के संकोच को हटाने में काफी सफलता प्राप्त की है। First year fool. वाली कहावत को इस साल पूर्णतया चरितार्थ होती ~~~~ पाई गई। इस का श्रेय भी इन्हीं द्वादश श्रेणी के बन्धुओं को दिया जा सकता है। इन के स्वागत में विविध सान्धुल्यों का कार्यक्रम रखा गया है। इस प्रकार इन नवागन्तुक बन्धुओं का प्रथम सप्ताह अतीव आनन्द पूर्वक व्यतीत हुआ।

नरेश

गुरुकुलीय-जगत.

सभायें ~

वाग्वर्द्धिनी सभा :- इस सभा के इस मास चार अधिवेशन हुवे। इस सभा की ओर से लाहौर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अर्द्ध शताब्दी के महोत्सव पर होने वाले हिन्दी वादविवाद प्रतियोगिता सम्मेलन में भाग लेने के लिये दो प्रतिनिधि - श्री. ब्र. केशवदेवजी. १४ श. तथा श्री ब्र. रणधीरजी १३ श. भेजे गये। दुर्भाग्यवश सम्मेलनों की भरमार के शताब्दी के प्रसंग पर यह सम्मेलन न हो सका। इस सभा के साप्ताहिक अधिवेशनों में काफी उत्साह नज़र आता है। "अनुभव सभा।" के रूप में एक विशेषाधिवेशन भी हुआ।

संस्कृतोत्साहिनी :- इस मास में तीन अधिवेशन हुवे। इस सभा की ओर से भी संस्कृत भाषण प्रतियोगिता के लिये दो प्रतिनिधि श्री ब्र. जगन्नाथजी १४ श. एवं श्री. ब्र. सत्यभूषणजी १२ श. भेजे गये। श्री ब्र. जगन्नाथजी १४ श. सर्वप्रथम रहे। विजयलक्ष्मी लेकर लौटे हैं उन्हें हमारी बधाई है। मंत्री जी का उत्साह भी सराहनीय है.

राजहंस
का
बुद्ध-जयन्ति-अंक.

कॉलेज-यूनियन :- इस वर्ष इस सभा में कुछ जीवन सा आ गया है। गत सालों में जहां सारे कालचर में इने गिने तीन चार अधिवेशन होते थे वहां इस सभा के इस मास में ही तीन अधिवेशन और एक विशेषाधिवेशन हुवे हैं। इस पुनर्जीवन का श्रेय यदि किसी को दिया जा सकता है तो वह मंत्री जी और उन के सहयोगियों को। आशा है आगे भी इसी उत्साह से मंत्रीजी कार्य करते रहेंगे।

आयुर्वेद-परिषद :- इस परिषद् में भी काफी उत्साह दिखाई देता है। आये दिन अधिवेशन होते रहते हैं। इन अधिवेशनों में ब्रह्मचारीगण भिन्न भिन्न विषयों पर अपने खोजपूर्ण एवं योग्यतापूर्ण निबन्ध पढ़ सुनाते हैं।

"गोष्ठी" सभा :- इस के अधिवेशन की आयोजना की जा रही है। इस वर्ष आशा है कि यह सभा अपने क्षेत्र में ज़रूर आगे बढ़ कर दिखायेगी।

२पुनः : श्रेणी हस्तकन्दुक सान्मुख्य

(From Our Spl. Correspondent.)

पहिला सान्मुख्य प्रथम और द्वितीय वर्ष का २२ की सायंकाल को क्रीडाक्षेत्र में बहुत से लब्ध-प्रतिष्ठित दर्शकों की उपस्थिति में प्रारम्भ हुआ। एकादश श्रेणी के विद्यार्थियों के कुछ कम होने से और उन का गुरुकुल में पहिला दिन होने के कारण वे दो बार खेल कर ही दर्शक होगये। इसका अभिप्राय यह है कि वे अपनी आशा के विरुद्ध अविजयी रहे। हमारा क्रीडा-विभाग उन्हें इस अवसर पर उत्साहित करता है और भविष्य के लिए उन से इस दिशा में और भी अधिक उन्नति करने की आशा रखता है।

दूसरे दिन त्रयोदश और चतुर्दश श्रेणी की खेल हुई। त्रयोदश

राज हंस
की
ओर अपनी भेंट.

के छात्रों ने — जिन्हें पथ-प्रदर्शन करना चाहिए था — प्रथम वर्ष का अनुसरण किया। Service तो Net के ऊपर से जाती थी पर बाकी सारा 'मामला' धरती के ऊपर से और Net के नीचे से। खेल साधारणतः 'सुहावनी' थी।

तीसरे दिन द्वितीय वर्ष और चतुर्थ वर्ष की आखिरी झड़प हुई। बहुत दिनों बाद रंग जमा था। Volley Ball धरती पर लोटने भी न पाती थी कि फिर व्योम-विहार की बारी आ जाती थी। आज तक तो पंछी ही उड़ते देखे थे पर अब बे-पर के अण्डे को भी उड़ते देख लिया - और अण्डा भी मामूली न था, वह था 'उष्ट्र: पक्षिविशेष:' का अण्डा। खैर। मुझे कलेजा थाम कर लिखना पड़ता है कि हमारे उपस्नातक भाइयों की खेल Superior होते हुए भी उन्हें पेट पर सूखा हाथ ही फेरना मिला। Fortune frowned upon them - अन्यथा ऐसा हो सकना नामुमकिन और नामुनासिब था। थोड़ा बहुत तो शायद Ground भी टेढ़ा था। मन्त्री

जी को इधर ध्यान देना चाहिए था। गल्ती उन्हीं की थी। खैर जी, अपने राम को इन सब से क्या वास्ता ! — खूब छनी किरकिरे मसाले में।

सन् ३६ के हस्तकन्दुक - सान्मुख्य के विजेता द्वादश श्रेणी के विद्यार्थी उद्घोषित किये गये। .

पुनः श्रेणी त्रियष्टिदण्ड सान्मुख्य —

(Special Cable)

पूर्व उद्घोषित सूचना के अनुसार सायंकाल ५ बजे नवागत एकादश श्रेणी और द्वादश श्रेणी के बीच में वक्र - दण्ड का सान्मुख्य आरम्भ हुआ। अभी खिलाड़ी आस्तीन भी न चढ़ा पाये थे कि ३ मिनिट में ही गेंद बल्लियों में नज़र आई। आखिर कइयों को शिकायत रह ही गई कि

कि गोल करने से पहिले उन्हें 'आकस्मिक दुर्घटना' के लिए सावधान नहीं किया गया था। अपने राम का तो यह दावा है कि यदि भारतीयों ने ऐसे अन्धेरों के प्रति अपनी आवाज़ बुलन्द न की और खामोश बैठे रहे तो थोड़ी ही रातों में समाज की हालत इस से भी बदतर हो जायगी। अभी खेल जारी ही थी कि आंधी के फैलते स्वरूप ने सब को सचेत कर दिया। Match स्थगित समझा गया और मैदान साफ होगया।

अगले दिन प्रातः दुबारा खेल प्रारम्भ हुई। खेल देखने से पता लगता था कि हरेक player हरेक से रूठा हुआ है। अच्छा लाठी चार्ज हुआ। पता नहीं इसकी शिक्षा कहां हासिल की गई थी, परन्तु यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि उस दिन वे वे हाथ देखने का सौभाग्य मिला जिन्हें देखने को लोग पीढ़ियों तक तरसेंगे।

द्वादश श्रेणी के पक्ष में गोल की सीटी के साथ समय

समाप्त हुआ ।

इस के बाद ही दूसरा सान्मुख्य त्रयोदश और चतुर्दश श्रेणी का हुआ । चतुर्थ वर्ष की पार्टी में पुराने अनुभवी खिलाड़ियों की कमी न थी और फिर Forwards की खेल तो सचमुच दर्शनीय ही थी परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी दैव उनसे ऐसा भागता था जैसे गधे के सिर से सींग । लाचार उन्हें अपनी रेतीली खोपड़ी पर 'ताल के महाफल' का बोझ संभालना ही पड़ा । Half time के पश्चात् सब ने एक साथ देखा कि गेंद दोनों बल्लियों के बीच से खिसक २ कर मैदान छोड़ रही है । अवशिष्ट २० मिनिट के समय में दोनों ओर से कई बार आक्रमण किये गये पर परिणाम सन्तोषजनक प्रतीत हुआ और परिवर्तन की गुञ्जाइश नहीं समझी गई ।

अगले दिन द्वादश और त्रयोदश श्रेणी में Final match खेला गया । प्रारम्भ से ही खेल का झुकाव किसी विशेष ओर

न था। आधे समय तक दोनों दल बराबर रहे। १० मिनिट शेष थे कि द्वादश श्रेणी का Result out कर दिया गया।

इस प्रकार अन्त में त्रयोदश श्रेणी का दल इस साल के लिए विजयी रहा।

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

१०५

("स्वतंत्र प्रेस" वाग्वर्द्धिनी कार्यालय में मुद्रित, एवं वाग्वर्द्धिनी कार्यालय से प्रकाशित)

१०५,